R.N.I. No. 2321/57
मार्च 2018

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18
अंक 2

तपोभूमि

मासिक

शहीद भगतसिंह

(1907-1931)

गुरूकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन का 118 वां वार्षिकोत्सव सम्पन्न

जैसाकि आप सबको विदित है कि गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन का अपना गौरवशाली अतीत रहा है। गुरुकुल ने स्वतंत्रता आन्दोलन में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था। गुरुकुल की इन सेवाओं को देखकर महात्मा गांधी, पूर्व राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्रप्रसाद, पूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु एवं लालबहादुर शास्त्री, पूर्व गृहमंत्री पं0 गोविन्द बल्लभ पंत, डॉ0 सम्पूर्णानन्द, सरोजनी नायडू जैसे महान् हस्तियों ने गुरुकुल के प्रांगण में पधारकर गुरुकुल के कार्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। भारत के महान स्वतंत्रता सेनानी आर्य पेशवा महाराजा महेन्द्रप्रताप ने बड़े उदार हृदय से गुरुकुल का यह विस्तृत भूखण्ड गुरुकुल के लिए समर्पित कर दिया था। स्वामी दर्शनानन्द, नारायण स्वामी जैसों ने यहाँ तपस्या की आचार्य विश्वेश्वर जी जैसों ने विद्या की आराधना की जिसके फलस्वरूप आचार्य मेधाव्रत जी जैसे संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् निकले जिनकी साहित्यिक रचनाओं को देखकर भवभूति और कालीदास जैसे संस्कृत के कवियों का ध्यान हो आता है। दुर्भाग्यवश स्वार्थपरता के कारण आर्यों के आलस्य और प्रमाद से गुरुकुल का सारा गौरव जाता रहा। बीसियों वर्षों से गुरुकुल नाममात्र का गुरुकुल रह गया था। अब उन ईश्वर की महान कृपा से आर्यों और आर्यप्रतिनिधि सभा के सक्रिय सहयोग से गुरुकुल पुनः पूर्व गौरव की ओर कदम बढ़ा रहा है।

इस वर्ष गुरुकुल का 118 वां वार्षिकोत्सव गुरुकुल के प्राचार्य आचार्य हरिप्रकाश एवं ब्रह्मचारियों की कठोर साधना से बड़े ही मनोरम वातावरण में सम्पन्न हुआ। उत्सव का उद्घाटन आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान डॉ0 धीरजसिंह आर्य के द्वारा ध्वजारोहण के साथ प्रारम्भ हुआ।

इस अवसर पर महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त श्री राजेश गोयल, प्रफुल्ल गोयल व अरुण मित्तल, डॉ0 सत्यमित्र आर्य (पूर्व महानिदेशक स्वास्थ्य विभाग उ0 प्र0) करुणामूर्ति श्री रामेश्वर सैनी गुहाना हरियाणा की गरिमामयी उपस्थिति रही। उत्सव के दूसरे दिन 24 फरवरी को फरीदाबाद के प्रसिद्ध समाजसेवी आस्था चैनल के डायरेक्टर गुरुकुल वृन्दावन के आधार स्तम्भ श्री कृष्णवीर जी शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नि सरोज शर्मा प्रातःकालीन यज्ञ में मुख्य यजमान बने। माननीय शर्मा जी की 25 वीं वैवाहिक वर्षगांठ भी थी। शर्माजी का गुरुकुल के प्रति समर्पण सराहनीय रहा है। उपस्थित जन समूह ने शर्मा दम्पत्ति को भारी हर्षध्वनि के साथ शुभकामनायें दी। संन्यासीवृन्द और वानप्रस्थी जनों ने शुभ आशीर्वाद दिया। शर्माजी ने सबको यथायोग्य दक्षिणा देकर सम्मानित किया गया। राष्ट्ररक्षा सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसकी अध्यक्षता सभा प्रधान डॉ0 धीरज आर्य ने की। इस अवसर पर डॉ0 अर्चनाप्रियार्या, आचार्य सोमदेव अजमेर, पं0 मोहित शास्त्री बिजनौर, सुन्दर पांचाल हरियाणा, देवमुनि वानप्रस्थ

–शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–64 संवत्सर 2075 मार्च 2018 अंक 2

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

मार्च 2018

सृष्टि संवत्
1960853118

दयानन्दाब्द: 194

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
स्वतंत्रता	–श्यामबिहारी मिश्र	5–8
विरजानन्द प्रकाश	–भीमसेन शास्त्री	9–12
राजनीति के कुछ सूत्र और भारत–भक्ति	–स्वामी सत्यानन्द महाराज	13–16
अनेक धर्मों की उत्पत्ति	–बाबू सूरजभान वकील	17–18
स्वास्थ्य चर्चा		19–22
स्वावलंबन	–पं0 माधवराव	23–25
स्वास्थ्योपयोगी आयुर्वेदिक शिक्षाएँ	–वैद्य बालकृष्ण आयुर्वेदाचार्य	26–28
विद्या ही मनुष्य का स्थायी धन है	–डॉ0 रामचरण	29–33

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

जुआ खेलने के प्रति नारी का रोष

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे।। —अथर्व0 4.38.4

शब्दार्थ:—

(याः) जो (अक्षेषु) जुए के पासों पर (शुचं क्रोधं च) शोक और क्रोध को (बिभ्रती) धारण करती हुई (प्रमोदन्ते) [प्रमुदित होती हैं वे प्रशंसनीय हैं]। जुए के पासों पर क्रोध करके (आनन्दिनीम्) आनन्दित होनेवाली, (प्रमोदिनीम्) प्रकृष्ट मोद माननेवाली (ताम् अप्सराम्) उस रूपवती नारी को, मैं (इह) यहाँ उपदेश–मंच पर (हुवे) बुलाता हूँ, निमन्त्रित करता हूँ।

भावार्थ:—

जुआरी अपनी तथा दूसरे जुआरियों की कुदशा देखकर कई बार यह निश्चय करता है कि भविष्य में जुआ नहीं खेलूँगा, किन्तु जब द्यूतालय के समीप से जा रहा होता है, तब एक बाजी खेल लेने के प्रलोभन को रोक नहीं सकता। वह एक बाजी ही नहीं रहती, परन्तु जुए में पूरा रम जाता है। वह अपने अनुभव से यह परिणाम निकालता है कि "जुए के पासे अंकुश की ताड़ना करनेवाले हैं, व्यथादायक हैं, चित्त को छेदनेवाले हैं, सन्ताप देना इनका स्वभाव ही हैं, बुरी मार देनेवाले हैं, जीतनेवाले को भी हराकर उस पर चोट करनेवाले हैं, ऊपर से मधु–संपृक्त दीखते हैं, किन्त वस्तुतः जुआरी का विनाश कर देनेवाले हैं। 'जुआरी की पत्नी हीनदसा को प्राप्त हुई संतप्त होती रहती है, जुआरी पुत्र की माता इधर–उधर भटकती है, जुआरी कर्जदार होकर धन की इच्छा से चोरी करने धनपतियों के घर पहुँचता है और वहाँ पकड़ा जाकर कारागार की हवा खाता है।' अन्त में परिणाम निकाला गया है कि "हे भाई! तू जुआ मत खेल, खेती कर, उससे जो कमाई प्राप्त हो उसी में सन्तोष कर।"

प्रस्तुत मन्त्र में कहा गया है कि नारियाँ अपने जुआरी पति की और अपनी दुर्दशा देखकर जुए के प्रति क्रोधाविष्ट हो उठती हैं और अपनी तथा पति की हालत पर शोकाकुल होने लगती हैं। वे सोचती हैं कि समाज से जुए का व्यसन समाप्त होना चाहिए। जुए के विरोध में आन्दोलन करके वे राजा से या संविधान द्वारा जुए को राजकीय अपराध घोषित करवाकर आनन्द मनाती हैं, प्रमुदित होती हैं। अप्सरा यहाँ नारी को ही कहा गया है। 'अप्स' रूप को कहते हैं और र प्रत्ययमतुबर्थक है, अन्त का आ स्त्रीलिंग का द्योतक है। रूप शारीरिक रूप ही नहीं कहलाता, गुणों और कर्मों का रूप भी होता है। शारीरिक रूप तो सभी ईश्वरप्रदत्त होने से अच्छे होते हैं। जुए के विरोध में आन्दोलन करने में सक्षम नारी का प्रजाजन आह्वान कर रहे हैं, और उसे मंच पर आकर जुए की बुराइयाँ बताने के लिए निमन्त्रित कर रहे हैं। ❁❁❁

गतांक से आगे–

कर्तव्य और आज्ञा पालन

लेखकः– श्यामबिहारी मिश्र

इसी प्रकार राजाज्ञापालन भी उचित स्वतंत्रता का बाधक नहीं है, क्योंकि इसके बिना समाज स्थिर नहीं रह सकता। प्रत्येक आज्ञा या तो स्वाभाविक अधिकार से दी जाती है या क्रीत अधिकार से। स्वामी जो सेवकों पर आज्ञा चलाते हैं वह इसी मोल लिए हुए अधिकार पर अवलंबित है। जब मैंने अपना समय, पुरुषार्थ आदि बेच दिया है तब स्वामी को उसके अर्पण करने में क्या आपत्ति हो सकती है? किन्तु वास्तव में यह एक कृत्रिम अधिकार मात्र है और वास्तविक कर्तव्यशास्त्र से इसका बहुत कम सम्बन्ध है। स्वाभाविक अधिकारवाली आज्ञाएँ ही प्रधानतया कर्तव्य शास्त्र में स्थान पाती हैं। इन आज्ञाओं के लिये पहली और परम प्रकृष्ट आवश्यकता यह है कि ये आज्ञाकारी ही के लाभार्थ हों। जब तक कोई आज्ञा इस कसौटी पर कसने से खरी न उतरे, तब तक वह वास्तविक आज्ञा है ही नहीं, वरन् आज्ञा के पवित्र रूप में वह वस्तुतः बड़ी ही गर्हित चोरी है और ऐसा आज्ञा–प्रचारक, शास्त्रकार, नेता आदि के पवित्र नामों से न पुकारा जाकर पूरा चोर कहलावेगा। ऐसे चोर की आज्ञापालन में पुण्य के स्थान पर पाप और कर्तव्यनिष्ठा के स्थान पर मूर्खता स्थिर होती है। अतः इसका न मानना ही परम धर्म एवं पक्का कर्तव्य है। अतः प्रत्येक आज्ञाकारी का पवित्र कर्त्तव्य है कि आज्ञाओं को शिरोधार्य करने के पूर्व इस पर विचार कर लेवे कि वे इस पवित्र कसौटी पर कसने से अपनी दीप्ति तो नहीं खोतीं। हम सभी लोग हर समय बहुधा साथ ही साथ आज्ञाकारी तथा प्रचारक दोनों होते हैं। ऐसे समयों पर हमें खूब जाँच कर लेनी चाहिए कि हमारी आज्ञाएँ किसी की उचित स्वतंत्रता के प्रतिकूल तो नहीं पड़तीं। बहुत लोगों का कथन रहता है कि शास्त्रीय आज्ञाओं के विषय में हम लोगों को अपनी बुद्धि से काम लेने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस कराल कलिकाल में हमारी बुद्धि का ऐसा ह्रास हो गया है कि वह उतनी ऊँचाई तक पहुँच ही नहीं सकती। ऐसे कथन करनेवालों को या तो बेईमान समझना चाहिए या कोरे लंठ। धूर्तता और मूर्खता इन दोनों के बाहर नहीं जा सकते, अर्थात् ऐसा कहनेवाले या तो धूर्त्त हैं या मूर्ख। ईश्वर ने बुद्धि–विकास किसी एक समय के लिये स्थिर नहीं कर दिया है वरन् सब समयों के लिये समभाव से सभी सद्गुणों का वितरण किया है। यदि यह मान लें कि उसने किसी के लिये अधिक बुद्धि–प्रदान आवश्यक माना और किसी के लिये कम, तो उसके दाक्षिण्य भाव में बड़ा भारी बट्टा लगेगा और प्रत्यक्ष सिद्ध हो जायगा कि वह भी शुद्ध न्याय न करके अकारण पक्ष ग्रहण करता है। संसार में साम्य का सिद्धान्त बहुत ही अटल है। ईश्वर ने सभी का समभाव से आदर एवं निरादर किया है। उसने किसी के लिये सुख और किसी के लिये दुःख

नहीं रचा है। जो कुछ अन्तर हम लोग संसार में देखते हैं वह हमीं लोगों के कर्मों के कारण है, चाहे वे इस जन्म के हों या पूर्व जन्मों के। यदि ईश्वर भी निष्कारण किसी को बुद्धिमान और दूसरे को मूर्ख बनावे, तो वह भी न्यायी नहीं हो सकता। उसने तो सभी कुछ सब के लिये बनाया है। अपने-अपने गुणकर्मानुसार मनुष्य सुख दुःख प्राप्त करता है। इसलिये ऐसा कभी न सोचना चाहिए कि कोई समय ईश्वर को किसी अन्य की अपेक्षा विशेष प्यारा है।

जैसे ईश्वरीय नियमों में समता-सिद्धान्त सर्वथा दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही मानवीय नियमों में होना चाहिए। जैसे वह दो समान खेतों में असमान धान्य नहीं देता, वैसे ही मानवीय नियमों को दो समगुणवान मनुष्यों का असमान सत्कार नहीं करना चाहिए। जो नियम इस अटल सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं वे महाघोर पातक फैलानेवाले और सर्वथा तिरस्करणीय हैं। लार्ड हार्डिंग महाशय ने अपने एक व्याख्यान में प्रत्यक्ष कहा है कि "जो कानून अन्याय पर अवलंबित है उसके न मानने का प्रत्येक प्रजा को स्वाभाविक अधिकार है।" इस कथन से बढ़कर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आदर संसार में बहुत कम हुआ होगा। यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक नियम, उपनियम, शास्त्र, कानून आदि सहज स्वातंत्र्य का विरोधी होने से कम से कम एक आवश्यक बुराई अवश्य है। किसी को और के अधिकारों को छीनने का स्वाभाविक अधिकार नहीं है। अधिकार संकुचन का नियम संसार में इसीलिये चला कि बिना इसके लोक-परिचालन नहीं हो सकता। इसलिये किसी के स्वाभाविक अधिकार वहीं तक छीने जा सकते हैं जहाँ तक उन से किसी दूसरे के उचित अधिकारों में बाधा पड़ती है अथवा अधिकार बरतनेवाले ही की हानि होती है। सुतराम् प्रत्येक नियम-रचयिता एवम् आज्ञाप्रचारक का कर्त्तव्य है कि दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा डालने के प्रथम अपने नियम अथवा आज्ञा के औचित्य पर ध्यान दे लेवे। इसी प्रकार प्रत्येक समर्थ आज्ञाकारी का अधिकार वरन् धर्म है कि उस आज्ञा के मानने से पूर्व उसके गुण दोषों पर पूर्ण समीक्षा कर लेवें। बिना ऐसा करने से बहुधा कर्त्तव्य-पालन के स्थान पर उस का हनन हो जाता है क्योंकि-

"धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः।"

ऊपर हम आज्ञाकारिता, स्वतंत्रता और कर्त्तव्य-परायणता में जो सम्बन्ध है उसे दिखलाने का प्रयत्न कर चुके हैं। अब कर्त्तव्य के कुछ अमुख्य सिद्धान्तों पर विचार करना शेष है। ऊपर के कथनों से प्रकट है कि कर्त्तव्य-परायणता के लिये समालोचना का गुण परमावश्यक है, क्योंकि भलाई के विचार में बुद्धिमत्ता एक अंग है। बिना बुद्धिमान हुए कोई शरीरी भला नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अपनी मूर्खता के कारण न जानते हुए भी वह बुराइयाँ कर सकता है। इसलिये कहा गया है कि मूर्ख मित्र से बुद्धिमान शत्रु भला है। प्रत्येक सुधी पुरुष के अनुभव में आया होगा कि आलोचनाओं में वक्रालोचनाओं की संख्या समालोचनाओं की अपेक्षा बहुत अधिक होती हैं। इसके कारण खोजने में भी धूर्तता अथवा मूर्खता से इतर कुछ न मिलेगा। लोग स्वार्थवश बहुधा पराए गुण को नहीं देख सकते, विशेषतया यदि वह गुणी उनका कोई निकट का सम्बन्धी हो। कर्तव्य के मार्ग में स्वार्थपरता ने जितने काँटे बोए हैं उतने किसी दूसरी वासना

ने नहीं बोए। साधारण स्वार्थपरता तो गृहस्थ के लिय निंद्य नहीं है, किन्तु स्वार्थी मनुष्य को चोरी से बचने के लिये सदैव पूरा प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि स्वार्थ की सीमाएँ चोरी से मिली हुई हैं और स्वार्थ-साधन में मनुष्य उचित से थोड़ा ही दूर जाने में चोरी की सीमा के भीतर पहुँच जाता है। यदि समीक्षा-करण में मनुष्य धूर्तता का सहारा छोड़ देवे जो सर्वथा उसी के अधिकार में है, तो उचित समीक्षा की बाधक मूर्खता ही रह जाती है। साधना का अभाव इसी के अन्तर्गत आ जाता है। जो कोई किसी विषय पर उचित परिश्रम किए बिना ही अपनी सम्मति स्थिर करना चाहता है वह भी एक प्रकार से मूर्ख ही है। इसीलिये कहा गया है कि जो मनुष्य सम्मति स्थिर करने का साहस नहीं करता वह कायर है, जो इच्छा नहीं करता वह आलसी हैऔर जो शक्ति नहीं रखता वह मूर्ख है। अतः प्रत्येक सम्मति स्थिर न करनेवाला या तो कायर है, या आलसी अथवा मूर्ख।

जब सम्मति का स्थिर करना ऐसा आवश्यक समझा जाता है तब उचित समझ पड़ता है कि उसके लिये विशेषतया सहायक दो चार बातों का भी यहाँ कथन कर दिया जाय। धूर्तता और मूर्खता का अभाव उचित सम्मति के पुष्टीकरण का अंग है। इसके अतिरिक्त उत्साह एक बड़ा ही उन्नतिकारी गुण है। काव्य-शास्त्र-विशारदों से छिपा नहीं है कि यही वीरता का स्थायी भाव माना गया है अर्थात् बिना इसके कोई मनुष्य वीर नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें वीरता के विचार आ ही नहीं सकते। उत्साह साधना का स्टीम इंजिन और श्लाघा का सहोदर है। किसी को भी श्लाघ्य न कहना नीचता की पराकाष्ठा है। ऐसे अधम पुरुष से किसी बात की भी आशा नहीं हो सकती। यद्यपि संसार में मंडनालोचना तथा खंडनालोचना दोनों आवश्यक हैं, तथापि अधिक स्थानों पर पहली से मानसिक उन्नति और दूसरी से अधःपतन देख पड़ते हैं। सुधी पुरुषों का यह भी एक कर्तव्य है कि वे सब की उचित महिमा करें। जो सब में महिमा का अभाव सोचता है वह स्वयं एक नीच पुरुष है। संसार में बहुधा सद्गुण और दुर्गुण मिले रहते हैं। प्रत्येक वस्तु और स्थान पर परिश्रम के सथ खोजने से प्रायः तीव्रालोचक यथारुचि सुगुण अथवा दुर्गुण की स्थापना कर सकता है। जिनको बहुत से लोग नितांत स्वार्थी अथवा मूर्ख समझते हैं, खोजने से उनमें भी बहुत से ऐसे सद्गुण मिलते हैं। किन्तु एक कौआ स्वच्छ घर पर बैठने में भी पुरीषागार को ही समुचित स्थान समझेगा। संसार में सद्गुणों तथा दुर्गुणों का पूरा कोष प्रायः सभी ठौर भरा हुआ है; केवल खोजनेवाला चाहिए। लोगों ने अपनी वक्रालोचना की शक्ति को यहाँ तक फैलाया है कि ईश्वर तक में बिना दोष देखे उनसे नहीं रहा जाता। एक दार्शनिक ने यहाँ तक लिखा है कि शरीरियों के लिये दो के स्थान पर तीन नेत्रों का होना और उनका एक ही स्थान पर होने की अपेक्षा सिर के तीन पृथक् कोनों में होना अधिक लाभदायक था। कम से कम दोनों वर्तमान नेत्र ही अति समीप न होकर सिर के आगे पीछे या कानों के ऊपर होते तो अधिक सुभीता होता। उनका कथन है कि ऐसे भद्दे नेत्रों और शरीर के अन्य अवयवों की खराबी से प्रत्यक्ष प्रकट है कि यह शरीर ईश्वरकृत नहीं है। अतः ईश्वर है ही नहीं। ऐसी ऐसी खंडनालोचना करनेवाले अपनी ही कम समझी दिखलाते हैं। हमारा लोक तो सहस्रों लोकों में एक है। तब

हम क्या जान सकते हैं कि अन्य लोकों के शरीरावयव कैसे होंगे और इस लोक में अवयव ऐसे रखने से उसका क्या प्रयोजन था? निदान मंडनालोचना से आलोचक एवं संसार की जितनी ज्ञान-वृद्धि हो सकती है उतनी खंडनालोचना से नहीं। इस कथन से यह प्रयोजन सिद्ध नहीं किया जाता है कि निंद्य वस्तुओं की निंदा न की जाय। ऐसा करना भी लोकोपकारक अवश्य है, परन्तु गुण को छिपाना और अवगुण निकालना सदैव अत्यन्त निंद्य समझना चाहिए। साधारणतया पंडितों का विचार है कि छिद्रान्वेषण से गुणावलोकन श्रेष्ठतर है। इसीलिये उनका कथन है कि साधारणतया बड़ों का समर्थन, बराबरीवालों का मान और अपने से छोटे दर्जेवालों से सभ्य व्यवहार उचित है। बड़ों को भाग्यवान मात्र कहकर उनके गौरव की तुच्छता व्यंजित करना प्रायः चोरी के समान तिरस्करणीय है क्योंकि अधिकतर दशाओं में कमाई हुई गुरुता का कारण गुण ही होता है; आकस्मिक घटनाएँ नहीं। इसलिये जो लोग ऐसा कहते हैं कि शिवाजी सा वर्ण्य नायक पाकर मैं भी भूषण से अच्छी रचना कर डालता, वे केवल अपनी ही क्षुद्रता प्रकट करते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर प्रत्येक गौरवप्राप्त मनुष्य एवं जाति में बहुत से ऐसे अनमोल गुण निकलते हैं जो उचित प्रकार से उसके गौरव के कारण और संस्थापक हैं। ऐसा कहनेवाले कि जब खँझड़ी मढ़ते बनती है तब खूब बजती है। बहुत स्थानों पर अपनी ही कुटिलता अथवा मूर्खता प्रकट करते हैं। यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि खँझड़ी मढ़ी तो उसी ने है। इन कथनों का यह तात्पर्य नहीं है कि कोई कभी आकस्मिक घटनाओं से गौरव प्राप्त करता ही नहीं। यहां प्रयोजन केवल इतना दिखाने से है कि सौ में नब्बे दशाओं में स्वयमर्जित गौरव के कुछ प्रबल और गरिमापूर्ण कारण होते हैं जिनको ईर्ष्या द्वेषवश वक्रलोचक देखना पसन्द नहीं करते।

कर्त्तव्य और आज्ञापालन का यह वर्णन अब यहीं समाप्त होता है। इसमें मुख्यता इसी बात की है कि कर्त्तव्य केवल इसलिये करना चाहिए कि वह करणीय है। इसमें फलों की आशा जोड़ कर इसके पुण्यपूर्ण तेज को कलंकित करने का विचार तक न करना चाहिए। कर्त्तव्यपालन में यदि कोई कभी समर्थ न हो तो भी उसका सच्चा प्रयत्न मात्र पूर्ण प्रशंसा के योग्य है। विफलता अथवा सफलता सच्चे कर्त्तव्यपालन की गरिमा को तिल मात्र घटा बढ़ा नहीं सकती। ❁❁❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2016** का शुल्क बार-बार के पत्र लेखन के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष **2017** तथा **2018** के वार्षिक शुल्क के साथ अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को जमा करायें। वर्ष 2017 का वार्षिक विशेषांक **शान्ता** तैयार हो चुका है शीघ्र ही आप तक पहुँचाया जायगा। लेकिन जिनका शुल्क जमा होगा केवल उन्हीं को। इसलिये आपसे पुनः निवेदन है कि आप शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भेजकर अपनी प्रत्येक माह की पत्रिका व वार्षिक विशेषांक प्राप्त करते रहें। आशा है पाठकगण हमें निराश नहीं करेंगे।

-व्यवस्थापक

गतांक से आगे

विरजानन्द प्रकाश

लेखकः भीमसेन शास्त्री विद्याभूषण

प्रभात में श्री दण्डी जी चेतन होकर बैठ गए और उन्होंने प्रणव (ओ३म्) का उच्चारण किया। परिचर्या-परायण साधुओं से समाचार सुन श्री मथुरादासजी आ गए। शरीर-शुद्धि तथा दन्त-धावनादि कराके मुद्गदाली का यूष (पानी) सेवन कराया। तीन चार दिन की मथुरादासजी की सेवा से दण्डीजी स्वस्थ हो गए। निर्बलता शेष रही। दण्डीजी की इच्छा विश्रान्त पर स्वस्थान पर जाने की हुई, पर मथुरादासजी ने विनयपूर्ण आग्रह सहित दुर्बलता दूर होने तक उन्हें रोक रखा। स्वयं भी सदा उनके संनिहित रहे। प्रस्थान की इच्छा हो जाने पर दण्डीजी को बड़े-बड़े राजा-महाराजे भी न रोक सकते थे। परन्तु भक्त-साधु के सुमहान् अनुराग के वशीभूत हो रुके रहे।

बदरिया के अंगदराम बड़े गुरु-भक्त थे। उनकी विद्यमानता में कोई अन्य स्वार्थी शिष्य भी दण्डीजी के साथ उपर्युक्त आचरण नहीं कर सकता था। वे विद्याध्ययन चिरपूर्व समाप्त कर चुके थे। भोग प्रबल होता है। सम्भव है दण्डीजी की रुग्णता के प्रारम्भिक काल में वे किसी कारणवश सोरों से बाहर गए हुए होंगे। पर प्रसिद्धि है कि उन्होंने दण्डीजी की इस रुग्णता में बड़ी सेवा की थी। यह अवसर सम्भवतः उन्हें मथुरादासजी की कुटी पर मिला होगा।

बल प्राप्त होने पर श्री दण्डीजी ने विदा मांगी। मथुरादासजी ने उन्हें गाड़ी में सवार कराया और एक साधु को विश्रान्त तक पहुंचा आने को साथ भेजा। स्वयं भी कुछ दूर तक पहुंचाकर लौट आए।

सोरों से मथुरा
(संवत् 1902 ग्रीष्म)

दण्डीजी सौकरव में विश्रान्त पर स्व निवास स्थान पर पहुंचे। ताला खुला पड़ा था। यतिवर्य श्रृंखला (सांकल) खोलकर अन्दर जा बैठे। वहां के सब लोग दण्डी जी को लोकान्तरितों में गिन चुके थे, अतः उनको आया देख बड़े विस्मित हुए।

दण्डी जी का गृह, पुस्तक, वस्त्र, भोजनादि, परिच्छद से सर्वथा शून्य था। श्री दण्डीजी ने लोगों से कोई बात न की, केवल मथुरा जाने को एक गाड़ी किराये पर लाने को कहा। उनके सौभाग्य से एक गाड़ी शीघ्र मिल गई। इसे लौटकर मथुरा जाना था। श्री सरस्वती महोदय ने एक पूर्व परिचित मनुष्य को भृत्यरूप में साथ लिया और गाड़ी पर सवार हो गए।

श्री दण्डीजी के पास इस समय एक पैसा भी न था तथापि वे पूर्ण भगवदाश्रय विश्वासी थे, अतः गाड़ी व भृत्य लेकर चल पड़े। गाड़ी का किराया तथा भृत्य की भृति तो मथुरा पहुंचकर देनी थी, पर बैलों

का चार दिन का चारा, भूसा, दाना, रातब और स्वयं यदि चार दिन का उपवास भी ठान लें तो भृत्य का चार दिन का भोजन आदि व्यय तो प्रतिदिन कर्तव्य थे ही पर दण्डीजी को अपने भक्तिभाजन पर अटल विश्वास था।

नैषधीय चरित के कर्त्ता श्री हर्ष कवि ने ठीक लिखा है **"क्व भोगमाप्नोति न भाग्य–भाग् जनः"** (भाग्यशाली पुरुष को अपेक्षित पदार्थ कहां नहीं मिलता है) यह कहावत दण्डीजी की यात्रा के प्रथम दिवस ही चरितार्थ हो गई।

बिलराम निवासी मनीषी दिलसुखराय कुलश्रेष्ठ कायस्थ थे। कुलश्रेष्ठों का भोजन अति सात्त्विक होता है। मद्य–मांस की तो कथा ही क्या? इन लोगों के घरों में लशुन–पलाण्डु (प्याज) भी प्रवेश नहीं पाते। अतः ये लोग प्रायः सात्त्विक–वृत्ति धर्मपरायण होते हैं, तथा साधु–सन्तों की सेवा–शुश्रूषा में प्रसन्नता लाभ करते हैं।

मथुरा में प्रथम वर्ष
(सं0 1902)

हमारे चरित नायक सौकरव (सूकर–क्षेत्र = सौरों) से अलवर जाते समय सं0 1889 वैशाख में मथुरा होकर गए थे। इसी प्रकार वहां से लौटते हुये भी सं0 1893 में मथुरा होकर यात्रा हुई थी। इन दोनों अवसरों पर उन्हें मथुरा की परिस्थिति का परिज्ञान हो गया था। मुकुन्ददेव जी ने लिखा है कि मथुरा में स्थानीय छात्र 800–900 थे तथा लगभग 400 बाहर से आए हुए छात्र थे। सेठ गुरुसहायमल जी आगन्तुक छात्रों के भोजन–छादन की पूर्ण व्यवस्था करते थे। तीर्थ–यात्रार्थ समागत सेठ–साहूकार राजा महाराजा भी जब–तब पण्डितों के साथ ही आगन्तुक छात्रों का भी दक्षिणादि द्वारा समादर करते रहते थे।

मथुरा में वैसे तो शताधिक पण्डित थे, पर 40–50 तो सतत् अध्यापन–सत्र ही चलाते थे। अध्यापन–रसिक विरजानन्द ने इसी आकर्षण से मथुरा–निवास का निर्णय किया था। तथापि प्रथम वर्षार्ध में योग्य छात्र दण्डीजी को नहीं मिले।

श्री विरजानन्द जी भागवत महापुराण का तीव्र खण्डन करते थे। अन्य पुराणों पर भी आस्था नहीं थी। अनार्ष ग्रन्थों से अरुचि हो चुकी थी, अतः उनमें भी दोष–दर्शन करते रहते थे। अतः मथुरास्थ समस्त संस्कृत–पाठी तथा तदनुयायी जन श्री दण्डीजी में वीतश्रद्ध थे। बहु–संख्यक माथुर जनों ने तो श्री दण्डीजी के विषय में अपवाद फैलाना अपना कर्तव्य समझा हुआ था। मात्सर्य–दूषित–चेतसों के पतन की कोई सीमा नहीं होती। कोई कहता था–"यह दण्डी छीपा है।" कोई कहता था–"यह तो जुलाहा है।" लोग यहां तक झूठ बोलते थे कि–"यह कोट पहनता है।" कोई कहते थे–"यह पाजामा पहनता है। यह काषाय नहीं पहनता।" दण्डीजी शब्दानुशासन (अष्टाध्यायी) की प्रशंसा करते थे। इसकी लोग व्याख्या करते थे–"यह तो धर्म–बाह्य पोथी पढ़ाता है।" "यह सब ग्रन्थों की निन्दा करता है।" इन टीका–टिप्पणी का मनमाना विस्तार तो निकम्मे निरक्षर भट्टाचार्यों में ही अधिक था, तथापि इसके प्रवर्तक थे मुख्यतः भागवत–पाठी

तथा कौमुदी-पाठी अध्यापक। कुछ सुशिक्षित अध्यापक भी इन चर्चाओं में सोत्साह भाग लेते थे। इस महान् आन्दोलन के कारण वातावरण दण्डी जी के विपरीत बन गया था और प्रायः वर्षार्ध तक उन्हें अधिकारी छात्र नहीं मिले।

माथुर पण्डितों की दण्डीजी के वैदुष्य के तलस्पर्श की जिज्ञासा शनकैः बढ़ती गई पर वे साधारण प्रयत्नों से इसमें कृतकार्य न हो सके। तब उन्होंने अपने योग्य छात्रों को प्रश्न सिखा-सिखा कर दण्डीजी की थाह लेने को भेजना प्रारम्भ किया। युगलकिशोर गौड़, जगन्नाथजी चौबे, दामोदर जी सनाढय, चिरंजीलाल जी आदि इसी प्रकार थाह लेने को भेजे गए थे, पर वे सब दण्डीजी के वैदुष्य से, उनकी व्याख्याशैली से इतने चमत्कृत हुए कि पूर्व गुरुओं को छोड़ दण्डीजी के शिष्य बन गए। अब दण्डीजी की पाठशाला चमक उठी।

दण्डीजी मथुरा आकर प्रथम चौक बाजार के समीप, बाजार की चार-पांच दुकानों के ऊपर गूजरमल की कोठी में रहे थे। इससे जाने को, गली मेघा-मथुरा में होकर मार्ग था। इसी मेघा-मथुरा-मुहल्ले में गूजरमल की हवेली थी। हवेली की समीपता से, समय-समय पर दण्डीजी का राजाओं-महाराजाओं सदृश सत्कार होता था। सब बातों का आराम था। हां यमुना कुछ दूर पड़ती थी।

दण्डीजी का मथुरा पधारना अलवर नरेश को ज्ञात हो गया था। इसी वर्ष (सं0 1902) भाद्रपक्ष शुक्ला 13, रवि (14।9।1845) को अलवर-महाराज-कुमार शिवदानसिंह का जन्म हुआ। इस हर्ष अवसर पर महाराज विनयसिंह ने दण्डीजी को एक सहस्र मुद्रा भेंट में भेजी। श्री दण्डीजी को अलवर से आए प्रायः 10 वर्ष हो चुके थे। इस सम्पूर्ण काल की दक्षिणा 15) मासिक के हिसाब से भेजी। अलवर के प्रेम सुख विद्यार्थी को पत्र देकर साथ में भेजा और पत्र द्वारा व वाचिक अलवर पधारने की प्रार्थना पहुंचाई। दण्डीजी ने भक्त शिष्य की भेंट तो स्वीकार करली पर मथुरा छोड़ना स्वीकार न किया। विनयसिंह जी आगे भी 15) मासिक दण्डीजी को भेंट करते रहे थे। इन भक्त नरेश का स्वर्गवास सं0 1914 श्रावण कृ0 3 शुक्र (10।7।1857) को हो गया। यदि यह कुछ वर्ष और जीवित रह जाते तो दण्डीजी की अभीप्सित सार्वभौम सभा अवश्य करवा देते। पं0 मुकुन्ददेवजी ने लिखा है कि दण्डीजी गृह में डेढ़-दो मास से अधिक नहीं रहे, पर अलवर से भेंट प्राप्ति भी इसी गूजरमल के घर में रहते, ध्वनित की है। अतः भाद्रपद समाप्ति से कुछ आगे यह निवासकाल स्वतः पहुंच जाता है। मुकुन्ददेवजी ने लिखा है कि प्रथम छै मास में दण्डीजी को योग्य छात्र नहीं मिले। हमें ऐसा लगता है कि उनको अधिकारी छात्र मिलना इसी स्थान पर प्रारम्भ हो गया था। अतः इस गृह का निवास अधिक ही प्रतीत होता है। पुरानी रूढ़ियों के अनुसार कार्तिक शुक्ला 11 से पूर्व गृह-परिवर्तन सम्भव नहीं। दण्डीजी यद्यपि समग्र रूढ़ियों के अन्धभक्त न थे, अनेकों को सर्वथा न मानते थे, अतः हो सकता है कि इस रूढ़ि से स्वयं बद्ध न भी मानते हों, पर इस विषय में हममें कोई निश्चित ज्ञान नहीं है। पर अन्य बातों के विचार से भी हमें तो वे कार्तिकान्त तक तो इसी में रहे प्रतीत होते हैं।

इस गृह को छोड़कर श्री दण्डीजी ने कुछ समय गत-श्रम नारायण के मन्दिर को सुशोभित किया था। यह मन्दिर अवागढ़ नरेश ने बनवाया था। प्राणनाथ आचार्य एक बड़े विद्वान् हुए हैं। उन्होंने सिद्धान्तकौमुदीकी प्राणनाथी नाम सुन्दर टीका रची थी। वे अवागढ़-नरेश तथा कुछ अन्य राजाओं के गुरु थे। अवागढ़-नरेश ने यह मन्दिर बनवाकर प्राणनाथ जी को भेंट किया था। उन्हीं के वंशधर प्रसादीलालजी आचार्य इस काल (सं0 1902) में इस मन्दिर के व्यवस्थापक थे। उनका अष्टादशवर्षीय पुत्र वासुदेव छोटी अवस्था में ही अच्छा पण्डित हो गया था। उसके विद्योत्कर्ष की कामना करते हुये प्रसादीलालजी दण्डीजी का महान् आदर सत्कार करते थे। सम्भवतः उन्हीं के विनीत अनुरोध के वशीभूत हो दण्डीजी उपर्युक्त मन्दिर में चले गए। दण्डीजी के अनुग्रह से वासुदेवाचार्य शीघ्र ही महान् पण्डित हो गया। उसने वृद्ध-पण्डित-जन-दुर्लभ प्रतिष्ठा पाई। पर हुआ यह अल्पायु। ऐसे ही व्यतिकरों से व्यथित हो भर्तृहरि ने कहा है-

सृजति तावशेष-गुणाऽऽकरं पुरुष-रत्नमलंकरणं भुवः।
तदेपि तत्क्षणभंगिड़ करोति चेहहह कष्टमपण्डितता विधेः॥

-(शेष अगले अंक में)

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रूपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रूपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठायें।

हम आपको वार्षिक विशेषांक सहित पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F SC Code- IOB A 0001441

***'सत्य प्रकाशन'** खाता संख्या- 144101000002341*

राजनीति के कुछ सूत्र और भारत-भक्ति

लेखकः स्वामी सत्यानन्द महाराज

परमहंस जी के कार्यकाल में भारतवर्ष पर भय-नीति और दमन-नीति का राज-चक्र चल रहा था। सैनिकों के उठने के पश्चात् राजपुरुष-शासन ने प्रजा को निःशस्त्र बना दिया था। यहाँ का व्यापार-व्यवसाय सब नष्ट हो चुका था। आर्यावर्त के भविष्य पर निराशा की, निर्बलता की, कायरता की, निर्धनता और सबसे बढ़कर भयंकर दुर्भिक्ष की महा अंधेरी रात्रि छा गई थी। भय-नीति दमन-नीति के शासन में कोई राष्ट्र-सुधार का नाम तक न लेता था। इस विषयमें देश के कौने-कौने तक चुप्पी छाई हुई थी। ऐसे विषम समय में सारे भारत-खण्ड में एक श्री दयानन्द जी ही थे जो पूरी दमन-नीति के दिनों में राष्ट्र-सुधार की चर्चा चलाते, जातीय जीवन का उपदेश देते, प्रजा-पीड़ा की चिन्ता करते, लोक-हित की हत्या के विरुद्ध बोलते और मनुष्य मात्र के स्वभावसिद्ध अधिकार-स्वराज्य-का सुरीला गीत गाते थे। ऊपर कहे वाक्यों का भाव परमहंस जी के इन वचनों से प्रकट होता है-

"अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य से, प्रमाद से, परस्पर विरोध से, अन्य देशों में राज्य करने की कथा तो क्या कही जाय, आर्यों का तो इस समय आर्यावर्त में भी अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन और निर्भय राज्य नहीं है। जो कुछ है भी, तो वह भी विदेशियों के पदाक्रान्त हो रहा है। थोड़े से राजा ही स्वतंत्र हैं। जब दुर्दिन आता है, तब देश-वासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं।"

"कोई कितना ही (यत्न) करे, जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि होता है। (यदि) मत मतान्तर के आग्रह से रहित, अपने-पराये के पक्षपात से शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा करने वाला, न्याय और दया से युक्त भी विदेशियों का राज्य हो, तो भी सुखदायक नहीं हो सकता। (क्योंकि) भिन्न-भिन्न भाषा का, पृथक्-पृथक् शिक्षा और अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छटे एक दूसरे कापूरा उपकार होना अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।"

श्री स्वामीजी महाराज ने सत्यार्थ-प्रकाश के विशेष समुल्लास में तो स्वराज्य का वर्णन किया ही था, परन्तु भारत देश की दीनदशा पराधीन प्रजा के अवस्था और जनता की अधोगति उनके विमल चित्त-दर्पण पर ऐसी प्रतिबिम्बित थी वे परम प्रभु से प्रार्थना करते हुए भी अपने हार्दिक उद्‌गारों को इन शब्दों में प्रकाशित कर गये हैं-"(हे प्रभु मैं) चक्रवर्ती राज्य और विज्ञान रूप को प्राप्त होऊँ। जो आपको आत्मा आदि करता है, आप उसको व्यवहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य प्रदान करते हो (परमेश्वर!) आप कृपया हमको कोमलता आदि गुणयुक्त चक्रवर्ती राजाओं की नीति दान दीजिये। सत्य विद्या से युक्त सुनीति प्रदान करके (हमें) शीघ्र साम्राज्याधारी बनाइये।"

'हे ईश्वर! हमारी सहायता कीजिये, जिससे सुनीति युक्त होकर हमारा स्वराज्य बहुत ही बढ़ जाय। घोड़े आदि श्रेष्ठ पशुओं से और चक्रवर्ती राज्य के ऐश्वर्य से हमारे काम को पूर्ण कीजिये। हमें

चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य-धन सुख से प्रदान कीजिये। (हम) अन्योन्य की प्रीति से परमबल और पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें।'

'मुझको ……… सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य, जो स्थिर है, परम सुखकारक है, उसको प्राप्त कराइये। हम आपके पुत्र, आपकी कृपा से, उत्तम सुख का लाभ करें। जब तक जीयें, तब तक सदा चक्रवर्ती राज्यादि सुख से सुखी रहे। हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्, आपकी कृपा से हमें अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बल आदि उत्तम गुणों से पुष्टि कीजिये। हमारे देश में अन्य देशवासी राजा कभी न हों तथा हम लोग कभी पराधीन न हों।''

श्री स्वामी जी आर्यवर्त्त देश के महत्व पर इतने मोहित थे कि इसके सौन्दर्य को वे तुलनातीत समझते थे। इस भाव का प्रकाश उन्होंने इन वचनों में किया है-''यह आर्यावर्त्त देश ऐसा (सुन्दर) है कि भूगोल भर में इस देश के सदृश दूसरा देश दिखाई नहीं देता। इसी कारण, भारतभूमि का नाम स्वर्णभूमि है, क्योंकि यही भूमि स्वर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। सृष्टि के आदि में, आर्यजन इसलिये इसमें आकर बसे थे। भूगोल में जितने भी देश हैं-उनके जितने भी निवासी हैं-वे सारे इसी देश की प्रशंसा करते हैं, इसी से आशा रखते हैं। पारसमणि की बात सुनी जाती है, सो सच्ची नहीं है, परन्तु यह आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारस मणि है, जिस लोहे के दरिद्र विदेशी छूते ही सुवर्ण धनाढ्य हो जाते हैं।'' (सृष्टि के आदि) से महाभारत पर्यन्त सब सार्वभौम चक्रवर्ती राजा आर्य कुल ही में हुए थे। अब उन सन्तानों के अभाग्योदय से (ये) राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं।''

स्वामीजी महाराज गो आदि पशुओं की रक्षा का वर्णन करते हुए भारतवासियों की दु:ख-वृद्धि का कारण यों बताते हैं-''इन पशुओं के मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने-वाला जानियेगा। देखो, जब आर्यों का राज्य था, तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे। तभी आर्यावर्त वा अन्य भूगोल में मनुष्यादि प्राणी बड़े आनन्द से बर्तते थे। दूध, घी (आदि वस्तुओं) और बैल आदि पशुओं की अधिकता के कारण अन्न-रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से गो आदि पशुओं को मारनेवाले मांसाहारी, मद्यप इस देश में आकर राज्याधिकारी हुए हैं, तब से, क्रमशः आर्यों के दु:खों की बढ़ती (हो) जाती है।''

श्रीमहाराज आर्य जाति की अधोगति का, उसके ऐश्वर्य के प्रपतन का वर्णन करते हुए बड़े मर्मभेदी वाक्यों में कारणों का निर्देश करते हैं। वे कहते हैं-''आर्यावर्त्त में विदेशियों का राज्य होने का कारण आपस की फूट है, मतभेद है, ब्रह्मचर्य का नाश है, विद्या के पढ़ने-पढ़ाने का अभाव और बाल-काल में अस्वयंवर-विवाह है, मिथ्या-भाषण, विषयासक्ति आदि कुलक्षण और वेद-विद्या का प्रचार न होना आदि दुष्कर्म हैं।'' जब भाई से भाई लड़ने लग जाता है, तभी (तो) तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या आप लोग महाभारत की वे बातें जो पांच सहस्र वर्ष पहले हुई थीं, भूल गये? देखो, आपस की फूट से कौरवों-पाण्डवों और यादवों का सत्यानाश हो गया। सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग (आर्यों के) पीछे लगा हुआ है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छटेगा भी वा आर्यों को सब सुखों से

छुड़ाकर दु:ख-सागर में डुबा मारेगा। उसी गोत्र-हत्यारे, स्वदेश-विनाशक, नीच, दुष्ट दुर्योधन के अधम मार्ग में चलकर आर्य लोग अब तक भी दु:ख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि हम आर्यों से यह राजरोग नष्ट हो जाय।''

किसी जाति अथवा दल की गिरावट का कारण जितना आपस की फूट है, उतना ही आलस्य-प्रमाद भी है। जो जाति दुर्गुणों और दोषों की दलदल में एक बार फंस जाती है, फिर उसका सुधार सुगमता से नहीं होता। परमहंस दयानन्द जी आर्य जाति की अधोगति के कारण पर दृष्टिपात करते हुए कहते हैं-''स्वायंभुव राजा से पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य बना रहा। तत्पश्चात् परस्पर के विरोध से (ये लोग) लड़कर नष्ट हो गये। परमात्मा की इस सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् जनों का राज्य बहुत दिनों तक नहीं चला करता। संसार की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब (लोगों के पास) प्रयोजन से बहुत अधिक धन हो जाता है, तब (उनमें) आलस्य, प्रमाद पुरुषार्थ-हीनता, ईर्ष्या, द्वेष और विषयसक्ति आदि (दुर्गुण) बढ़ जाते हैं।''

महर्षि दयानन्द जिस समय कमर कसकर कार्य-क्षेत्र में उतरे थे, उस समय भारतवर्ष में बड़ा भारी परिवर्तन दिखाई देता था पश्चिमी विज्ञान का भूकम्प पूर्व की विचार-शिलाओं को बार-बार कम्पायमान् कर रहा था। पादरियों की खण्डन-खड्ग और वचन-वाण-वर्षा ने उस समय के आर्य पुरोहितों को प्रायः परास्त कर रक्खा था। पश्चिमी सभ्यता की चमक-दमक ने भारत की लिखी पढ़ी प्रजा की आँखों में चकाचौंध लगा दी थी। वेश में, विभूषणों में, भाषा में और रहन-सहन में इतना परिवर्तन हो रहा था कि मानो यहाँ के जातीय मन्दिर की प्रत्येक ईंट उखड़ जायगी। परायापन इतना आ गया था कि अपनेपन का नाम तक उड़ा चाहता था। दण्डी दयानन्द परिवर्तन के महा चंचल चक्र को रोकने के लिए इस मार्ग में एक अति कड़ी रोक बन गये। उन्होंने अपने ज्ञान सें, बुद्धि-बल से, और शुद्ध तर्क के प्रताप से पश्चिमी माया-जाल का परदा एकबार गी उठा दिया और भ्रम भरी प्रजा को सनतान सत्य का बोध प्रदान किया।

श्री स्वामी जी ने किसी जाति के बहिरंग क अनुकरण को अनुचित और आडम्बर सिद्ध करते हुए, उस समय, भारतीयों को यह भावपूर्ण उपदेश दिया था।

''प्रश्न-देखो, यूरोपिन लोग मुन्डे जूते और कोट-पतलून पहनते हैं, होटलों मे सबके हाथ का खाते पीते हैं, इसी कारण अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

''उत्तर-यह आपकी भारी भूल है। देखो, मुसलमान और दूसरे लोग सबके हाथ का खाते है, फिर भी उनकी उन्नति क्यों नहीं होती? यूरोपियनों की उन्नति इस कारण हो रही है कि वे बाल्यावस्था में विवाह नहीं करते, पुत्र-पुत्रियों को विद्या और सुशिक्षा दिलाते हैं। उनमें स्वयंवर विवाह होता है। वे जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते। जो कुछ करते हैं, परस्पर विचार कर करते हैं-सभा में निश्चित करके करते हैं। अपनी जाति की उन्नति के लिये अपना तन-मन-धन तक लगा देते हैं आलस्य को त्यागकर उद्योगी बने रहते हैं।

"देखिये, वे अपने देश के बने जूते को (तो) कार्यालय तथा कचहरी में जाने देते हैं, (परन्तु) इस देश के जूते को नहीं जाने देते। इतने ही में समझ लीजिये कि (वे) अपने देश के बने जूतों (तक) का जितना मान और जितनी प्रतिष्ठा करते हैं, अन्य देश के मनुष्यों का भी उतना (मान) नहीं करते। देखिये, यूरोपियनों को इस देश में आये सौ से कुछ ऊपर वर्ष हुए हैं, पर आज तक वे लोग वैसे ही मोटे कपड़े आदि पहनते हैं जैसे अपने देश में पहनते थे। उन्होंने अपने देश का चाल-चलन नहीं छोड़ा। परन्तु आप में से बहुत लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया है। इसी से तो तुम निर्बुद्धि ठहरते हो और वे बुद्धिमान् सिद्ध होते हैं। ऐसा अनुकरण करना किसी बुद्धिमान का काम नहीं।

"(उनमे से) जो जिस काम पर रहता है, उसको यथोचित रीति से करता है। वे आज्ञानुज्ञावर्ती बराबर बने रहते हैं। अपने देशवासियों को व्यवहार आदि में सहायता देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति हो रही है। मुंडा जूता और कोट-पतलून पहनने तथा होटलों में खाने-पीने आदि साधारण और बुरे कर्मों से नहीं बढ़े हैं।"

स्वामी श्री दयानन्द जी अपने उपदेशों और वार्तालाप द्वारा भारतवासियों में सदा वे भाव भरा करते थे जिनसे उनमें मनुष्यत्वका मान बढ़े। वे भोले-भाले, भीरु और निस्तेज न बने रहें। महाराज के मन में मनुष्य का मान कितना महान् था, इसका ज्ञान उनके इस उपदेश से होता है-"मनुष्य उसी जन को कहना (चाहिए) जो मननशील होकर अपनी तरह दूसरों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे, और धर्मात्मा निर्बल का भी भय माने। इतना ही नहीं, किन्तु महात्मा जन चाहे महा अनाथ, निर्बल और निर्गुण क्यों न हों, अपने सारे सामर्थ्य से उनकी रक्षा, उन्नति और प्रिय आचरण करे। अधर्मी (जन) चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबली और गुणवान् भी हो तो उसका नाश, अनिष्ट और अवनति सदा करता रहे। जहाँ तक भी हो सके, अन्यायकारियों के बल को सर्वथा हानि किया करे और अपकारियों के बल को बढ़ाया करे। इस काम को करते हुए उसको चाहे कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, उसके प्राण भी भले चले जायं, परन्तु वह इस मनुष्यत्व रूप धर्म को कभी न छोड़े।"

महाराज के मत में दूसरे जनों को लाभ पहुंचाना मनुष्यत्व का चिन्ह है। यही उपदेश वे इन वचनों में देते हैं-"सच तो यह है कि इस अनिश्चित, क्षण-भंगुर जीवन में पराई हानि करके स्वयं से वंचित रहना और दूसरे को वंचित रखना मनुष्यत्व के विरुद्ध है।"

आगे दिये उपदेश में महाराज ने मनुष्यत्व के उज्ज्वल अंश का वर्णन किया है-"मनुष्य से भिन्न जातियों के जितने प्राणी हैं, उनमें दो प्रकार का स्वभाव है। एक तो बलवानों से डरना, और दूसरे निर्बलों को डराना-उनको पीड़ा देना, यहाँ तक कि यदि उनके प्राण निकालकर भी अपना स्वार्थ निकल सके तो निकाल लेना। जिस किसी मनुष्य में भी ऐसा स्वभाव हो तो उसे भी उन्हीं जातियों के प्राणियों में गिनना चाहिए। परन्तु जो मनुष्य निर्बलों पर दया और उपकार करता है, उनको पीड़ा से बचाने के लिये तन-मन-धन तक अर्पण करने को सदा तैयार रहता है, और निर्बलों को सताने वाले अधर्मी बलवानों से किंचिन्मात्र भी भय नहीं खाता, पाप-कर्म करने से काँपता है, तथा सत्य-कर्म करते निर्भय और निःशंक बना रहता है, वही मनुष्य धन्यवाद का पात्र है। यही मनुष्य-जाति का निज गुण है।" ❁❁❁

गतांक से आगे–

अनेक धर्मों की उत्पत्ति

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

इसी प्रकार लोग भी अनेक विरोधी सिद्धान्तों को मानते हैं और उन पर कुछ भी विचार नहीं करते हैं। यथा–एक परमपिता परमेश्वर को मानते हुए भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अनेक देवताओं को मानना और बड़े–बड़े वेदान्तियों, योगाभ्यासियों और दार्शनिकों द्वारा भी गंगास्नानादि से मुक्ति माना जाना इत्यादि। परन्तु यह दोष इन भोले लोगों का नहीं है, बल्कि उन उपदेशकों का है जो नवीन–नवीन सिद्धान्त तो फैल जाते हैं, परन्तु विरोध उठ खड़े होने के भय से उन पुराने सिद्धान्तों को रद्द नहीं कर जाते हैं जो इन नवीन सिद्धान्तों के विरोधी होते हैं; किन्तु पुराने सिद्धान्तों को भी सत्य बतलाकर और उनका सहारा लेकर किसी बहाने से अपने नवीन सिद्धान्तों को चला जाते हैं। जैसे सांख्य, वैशेषिक, न्याय, वेदान्त और योग आदि सभी दर्शनों ने एक दूसरे के बिलकुल विरोधी नये–नये सिद्धान्त स्थापित करके एक दूसरे के सिद्धान्तों का खंडन करते हुए भी यही सहारा लिया है कि हम सब वेदों के ही अनुकूल कहते हैं। यहाँ तक कि वाममार्गियों और अभी स्वामी दयानन्द ने भी उन अति प्राचीन वेदों का सहारा नहीं छोड़ा है जो मनुष्य की प्रारम्भिक सभ्यता के समय में अग्नि, वायु, सविता आदि देवताओं की प्रार्थना करने के लिए भजनों के रूप में बनाये गये थे और जिनमें ग्रामीण लोगों की बहुत स्थूल प्रार्थनाओं और देवी–देवताओं की स्तुतियों के सिवा और कुछ भी तथ्य नहीं है।

जो हो, परन्तु परलोक अर्थात् स्वर्ग नरक और आवागमन आदि सिद्धान्तों तक पहुंच जाने के बाद मनुष्यों के विचार और भी आगे बढ़ते हैं और संसार की अनेक वस्तुओं के स्वभाव और कार्य कारण के सम्बन्ध का अधिकाधिक अनुभव होते रहने के कारण उनके मन में और भी अनेक नये–नये प्रश्न उठने लगते हैं। जैसे–इन जगत को परमेश्वर बनाया है या वह सदा से ऐसा ही चला आता है? जीव अजीव और देवी देवता भी परमेश्वर ने बनाये हैं या सदा से चले आते हैं? यदि परमेश्वर ही इस जगत् को बनाता है तो बिना उपदान के बनाता है या जैसे कुम्हार मिट्टी नहीं बना सकता है परन्तु मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बना सकता है, उसी प्रकार परमेश्वर भी उपादान या सामग्री नहीं बना सकता है किन्तु बनी बनाई सामग्री से जगत को बनाता है? परमेश्वर इस जगत को क्यों बनाता है? वह अपनी पूजा क्यों चाहता है? वह हमें स्वर्ग नरक में क्यों डालता है? सूर्य, चन्द्र और आकाश के ये लाखों करोड़ों तारे क्या हैं और किस आधार पर लटके हुए हैं? हमारी पृथ्वी और हमसे इनका क्या सम्बन्ध है? वर्षा क्यों होती है? मेघ क्या वस्तु है? मेघों में पानी कहाँ से आता है? नदियों का पानी मीठा और समुद्र का पानी खारा क्यों है? सोना, चांदी आदि धातुयें, नमक, फिटकरी, गंधक आदि औषधियां खानों से क्यों निकलती हैं?

धरती में किसने उन्हें इकट्ठा किया है? कब किया है और क्यों किया है? और जब ये समाप्त हो जायंगी तब क्या होगा? इनके उत्तर में अनेक कल्पनायें करते हैं, परन्तु सहसा कोई बात निश्चित नहीं कर सकते हैं और प्रत्येक विचार के उत्तर में मन में यह कहकर ही संतोष कर लेते हैं कि ईश्वर की माया अपार है, उसका अंत किसी को नहीं मिल सकता है। ये लोग आपस में मिलकर एक दूसरे के विचारों को जानने की भी कोशिश नहीं करते हैं, क्योंकि ऐसा करने से वे आपस में विरोध खड़े हो जाने या धर्मयुद्ध छिड़ जाने का भय खाते हैं। यदि कोई मनुष्य कभी साहस करके किसी नवीन बात को लेकर उठता भी है, तो उसे यह कहने का साहस नहीं होता है कि यह नवीन बात मैंने अपनी बुद्धि से निकाली है, बल्कि वह यही कहता है कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह किसी देवी–देवता या परमेश्वर का कथन है। इसी कारण संसार में जितने मत प्रचलित हैं वे सब आपस में जमीन–आसमान का फर्क रखते हुए भी यही कहते हैं कि हमारा मत सीधा ईश्वर की ओर से आया हुआ है और दूसरे मत मनुष्यों के रचे हुए हैं। ऐसी श्रद्धा से लोगों की विचार–बुद्धि पर भारी बोझा लद जाता है और वे अपने को इस बात का अधिकारी नहीं समझते हैं कि हम कोई नवीन सिद्धान्त खोजें या किसी नवीन बात में बुद्धि लड़ावें। अतएव अपनी प्राकृतिक विचार–बुद्धि के जरिये जो प्रश्न उनके मन में उठते हैं और उन प्रश्नों के जो उत्तर उनके मन में आते हैं, उनको वे अपने मन ही में रख छोड़ते हैं–दूसरों पर प्रकट नहीं करते हैं।

इस प्रकार मनुष्य की उन्नति सैकड़ों वर्षों तक रुकी रहती है और मौके मौके पर ही थोड़ी बहुत आगे को सरकती है। जब कोई नवीन साहसी पुरुष किसी नवीन मत को लेकर खड़ा होता है तब वह अपने उस मत को किसी गुप्तशक्ति की तरफ से आया हुआ ही बतलाता है। ऐसे पुरुषों के खड़े होने पर फिर भारी विरोध और झगड़े उत्पन्न होते हैं और अन्त में दलबंदी होकर कुछ लोग उनके पक्ष में आ जाते हैं और इस प्रकार उनकी नई बात चल जाती है। परन्तु बुद्धि–बल से काम लेने और आगे को नई नई बातों के निकालने की मना ही इस दल में भी वैसी ही हो जाती है जैसे कि इनके विरोधी दूसरे दलवालों में होती है। इसका कारण यह है कि ये भी बुद्धि से काम लेने की शिक्षा नहीं देते हैं, बल्कि वे स्वयं भी जो नई बात प्रचलित करते हैं उसे भी किसी गुप्त शक्ति की ओर से आई हुई बतलाते हैं। इस प्रकार जो लोग नवीन सिद्धान्त लेकर उठते हैं वे यद्यपि अपनी नवीन बात से मनुष्य जाति को कुछ न कुछ आगे को सरकाते हैं, फिर भी मनुष्य की विचारशक्ति को आगे बढ़ने से रोकते हैं। ***

चार चीजों का सदा सेवन करना चाहिए–सत्संग, संतोष, दान और दया।

चार अवस्थाओं में आदमी बिगड़ता है इसीलिये इनसे सावधान रहना चाहिए–जवानी, धन, अधिकार और अविवेक।

चार चीजें मनुष्य को बड़े भाग्य से मिलती हैं–भगवान को याद रखने की लगन, संतों की संगति, चरित्र को निर्मलता और उदारता।

चार गुण बहुत दुर्लभ हैं– धन में पवित्रता, दान में विनय, वीरता में दया और अधिकार में निरभिमानता।

गतांक से आगे–

स्वास्थ्य चर्चा

गर्भरोधक

मासिकधर्म के पश्चात् जब स्त्री स्नान कर चुके तब एरण्ड के बीज की गिरी छीलकर तीन गिरी निगलने पर तीन वर्ष तक गर्भ नहीं ठहरेगा।

नोट– तीन से अधिक सेवन न करें। जब सन्तान की इच्छा हो तब बीज न खाएँ। एक वर्ष पश्चात् गर्भधारण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

गर्भस्थापक

1. माजू 10 ग्राम, दक्षिणी सुपारी 10 ग्राम, हाथी–दाँत का बुरादा 50 ग्राम–तीनों को बारीक कूट–पीसकर गुड़ में मिलाकर रखें।

ऋतुकाल के पश्चात् शुद्ध होकर चौथे दिन से 6 ग्राम औषधि बछड़ेवाली गाय के दूध के साथ सेवन करने से बन्ध्या स्त्री भी गर्भवती हो जाती है।

2. अपामार्ग की जड़ का चूर्ण 30 ग्राम, काली मिर्च 21, दोनों को बारीक पीस लें। मासिकधर्म के एक सप्ताह पूर्व से ऋतु के तीसरे दिन तक दें। भोजन में दूध और चावल का प्रयोग करें। तीन मास तक ब्रह्मचर्य का पालन करें। इससे गर्भाशय के समस्त रोग दूर हो जाते हैं, मासिक नियमित हो जाता है। प्रदर एवं बन्ध्यत्व को दूर करनेवाली यह महौषधि है।

3. अच्छी प्रकार साफ की हुईं अजवायन 4 ग्राम, सेंधा नमक 2 ग्राम, दोनों को बारीक पीस लें और एक साफ कपड़े में रखकर पोटली बना लें। इसे सावधानी से योनि में गर्भाशय के पास रखें। कुछ ही मिनट में तेजी से पानी जैसा प्रवाह चालू होगा और थोड़ी देर पश्चात् स्वयं ही बन्द हो जायगा। जब पानी बन्द हो जाए तब पोटली को बाहर निकाल दें। इससे गर्भाशय के सारे विकार बाहर निकल जाएँगे।

इस प्रयोग को सायं 4–5 बजे करें। उस दिन सुपाच्य एवं पौष्टिक भोजन करें। खीर अथवा गर्म हलवे का सेवन करना उत्तम है।

रात्रि के द्वितीय प्रहर में पति–संग करें। इससे बन्ध्यत्व दूर होकर स्त्री अवश्य ही पुत्रवती होती है।

4. ऋतुकाल में चारों दिन 25 ग्राम अजवायन और 25 ग्राम मिश्री को 25 ग्राम पानी में रात्रि में मिट्टी के बर्तन में भिगो दें। प्रातः ठण्डाई की भांति खूब पीसकर पी जाएँ।

पथ्य में मूंग की दाल और रोटी (बिना नमक की) लें। आठ दिन दवा का सेवन करें। अवश्य गर्भ रहेगा।

5. बंगला पान 1 नग, लौंग 1 नग, अफीम बढ़िया 1 रत्ती, तीनों को बिना पानी मिलाए

घोटकर गोलियाँ बना लें।

मासिक से शुद्ध होने के पश्चात् 1 गोलीताजा जल से निगला दें। रात्रि में प्रसंग करें। इसी प्रकार तीन दिन एक-एक गोली निगलाएँ और प्रतिदिन प्रसंग करें। पहले ही मास में मनःकामना पूर्ण होगी, अन्यथा दूसरे मास में पुनः इसी प्रकार प्रयोग करें।

6. सोंठ 20 ग्राम, कालीमिर्च 20 ग्राम, पीपल 20 ग्राम, नागकेसर 20 ग्राम उपर्युक्त सामग्री को मिला लें। 3-3 ग्राम गाय के दूध में मिलाकर ऋतुस्नान के पीछे इसका सेवन करना चाहिए। इस दवा के सेवन से अवश्य गर्भ रहता है।

गर्भस्त्राव

5, 7 या 11 शिवलिंगी के बीज गर्भवती को प्रतिदिन गोदुग्ध से निगला दें। गर्भस्त्राव रुक जाएगा।

गर्भाशय की शुद्धि

काले मिल 25 ग्राम, पुराना गुड़ 9 ग्राम, शुद्ध हींग 4 ग्राम। तिलों को कूटकर आधा किलो पानी में औटाएं। जब चौथाई रह जाए तब उतारकर छान लें। इसमें गुड़ और हींग मिलाकर मासिकधर्म के पहले और दूसरे दिन दें। तीसरे दिन भी दे सकते हैं परन्तु चौथे दिन नहीं। इसके प्रयोग से गर्भाशय की शुद्धि हो जाता है।

गर्भिणी के वमन पर

1. एक ग्राम लौंग पीसकर मधु के साथ चटाना चाहिए।

2. नारियल की जटा जला लें। 1 ग्राम राख 10 ग्राम शहद में मिलाकर चटाएँ। अतीव गुणकारी है।

3. बढ़िया चावल 50 ग्राम लेकर 250 ग्राम पानी में भिगो दें। आध घण्टा भीग जाने के बाद उसमें 5 ग्राम धनिया भी डाल दें। 5-7 मिनट पश्चात् इसे मलकर छान लें और 3-4 बार में थोड़ा-थोड़ा करके पिलाएँ। गर्भिणी का वमन बन्द करने में तत्काल फलप्रद है।

4. कमलगट्टे की भीतर की मींगी, छोटी इलायची के दाने, मिश्री, तीनों 10-10 ग्राम, वंशलोचन असली 5 ग्राम। सभी दवाओं को कूट-पीसकर कपड़छन कर लें। मात्रा एक से तीन ग्राम तक है। सर्दियों में गर्म दूध से और गर्मियों में गर्म दूध को ठण्डा करके दें। इसके प्रयोग से कै तो बन्द होती ही है, गर्भपात और गर्भस्राव से भी बचाव होता है।

5. अर्क केवड़े को बिना पानी मिलाए 1-1 या आध-आध घण्टे में दस-दस या बीस-बीस ग्राम दें। 5-6 मात्रा देने से वमन बन्द हो जाएँगे।

गला बैठना

कचूर चूसने से बैठा हुआ गला खुल जाता है।

गुर्दा रोग

1. मेंहदी के पत्ते 6 ग्राम, पानी 500 ग्राम। दोनों को पकाएँ। जब 150 ग्राम पानी रह जाए तब उतारकर छान लें और समोष्ण पिलाएँ। दो-तीन दिन पिलाना पर्याप्त है।

2. मूली का रस 100 ग्राम मिश्री मिलाकर प्रातः बिना कुछ खाये-पिये सेवन करें। दर्द गुर्दा और पथरी के लिए लाभदायक है।

गुहाँजनी=गुहेरी

1. इमली के बीजों की गिरी को पत्थर पर चन्दन की भांति घिसकर गुहाँजनी पर लेप करें। इसके प्रयोग करने से तत्काल ठण्डक पड़ जाती है। भविष्य में रोग फिर नहीं होता। गुहाँजनी के लिए इससे श्रेष्ठ अन्य औषधि मिलना कठिन है।

2. लौंग को पानी में घिसकर लगाएँ।

3. सिन्दूर 2 ग्रेन को जरा-से पानी में घिसकर लगाने से गुहाँजनी ठीक हो जाती है।

4. छुहारे की गुठली को पानी में घिसकर लगाने से भी लाभ होता है।

5. आम के पत्ते को तोड़कर उसक डण्ठल से निकले हुएचेप को लगाने से गुहेरी ठीक हो जाती है। यदि आमों की फसल हो तो आमों को तोड़ने के बाद उसके डण्ठल से जो चेप निकलता है, उसे लगाना चाहिए।

6. प्रातः सायं 3-3 ग्राम त्रिफला चूर्ण गोदुग्ध में लें। इसके सेवन से बार-बार गुहेरी निकलना बन्द हो जाएगा।

7. यदि बार-बार गुहेरी होती हो तो मूत्रेन्द्रिय को साफ करके उसकी सफेदी दूर कर दो। बार-बार गुहेरी होना बन्द हो जाएगा।

गूलर-अनेक रोगों की एक दवा

कटे पर- जहाँ से रक्त बह रहा हो, वहाँ गूलर के पत्तों का रस टपकाएँ रक्त बहना तुरन्त बन्द हो जाएगा और जलन भी शान्त हो जाएगी।

जले पर- गूलर के पत्ते पीसकर लगा दें, जलन जाती रहेगी, छाले नहीं पड़ेंगे, निशान भी नहीं पड़ेंगे।

गूलर के पत्तों का रस पीने से हृद्विकार, यकृत-दोष और वातविकार नष्ट होते हैं।

रक्त प्रदर- गूलर के पत्तों का रस पीने से रक्तप्रदर नष्ट हो जाता है।

हैजा- गूलर के पत्तों का रस पीने से हैजा दूर हो जाता है।

गूलर स्वयं में एक औषधालय है। गूलर के पत्तों का रस सेवन करने से और कुछ समय तक केवल गूलर के फल खाने और दुग्ध-पान करने से ज्वर, शोथ, हृदय-रोग, चक्कर आना और वात-पीड़ा शान्त होती है।

बिच्छू–डंक पर– दंश–स्थान को काटकर सूखा गूलर चूर्ण भर दें या हरे पत्तों को पीसकर लगा दें। सारा विष दूर हो जाएगा।

सर्प–विष पर– गूलर के पत्तों को स्वरस पीने से अथवा गूलर के सूखे पत्तों का चूर्ण 10–10 ग्राम एक–एक घण्टे बाद फांकने से सर्प–विष उतर जाता है।

गूलर की प्रशंसा में इतना ही कहना पर्याप्त है कि गूलर वृक्ष के रहते हुए यदि लोग व्याधि से पीड़ित होकर मर जाएँ तो इससे अधिक क्या आश्चर्य होगा।

गृध्रसी (Sciatica Pain)

1. आँवा हल्दी, मैदा लकड़ी, दोनों 6–6 ग्राम। उत्तम गोघृत (न मिले तो भैंस का सही) और मिश्री 12–12 ग्राम। सभी वस्तुओं को 250 ग्राम दूध और 250 ग्राम पानी में डालकर उबालें। जब पानी जल जाए और दूध की मात्रा शेष रह जाए तब उतारकर छान लें और गुनगुना रहने पर रोगी को पिला दें। तत्पश्चात् रोगी को कपड़ा उढ़ाकर सुला दें। पसीना आयेगा, उसे भीतर–ही–भीतर पोंछते रहें, हवा न लगने दें। प्रातः मध्यान्ह और सायं, दिन में तीन बार प्रयोग करें। खाने को कुछ न दें। यह औषधि ही पर्याप्त है। तीन दिन में पूर्ण आराम आ जाएगा।

2. अरण्डी की मींगी को दूध में पीसकर पिलाने से गृध्रसी और कटिशूल नष्ट होता है।

गैस ट्रबल

1. अरदक का रस, नीबू का रस और शहद, तीनों 6–6 ग्राम लें। तीनों को मिलाकर दिन में तन बार चटाएँ।

2. प्रतिदिन तीन छोटी हरड़ मुख में डालकर चूसते रहें (देखें कायाकल्प)।

3. आक के पीले पत्ते 100 ग्राम, नमक 10 ग्राम, दोनों को कूट–पीस, घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। प्रतिदिन 2–3 गोलियाँ चूसें। अत्यन्त सस्ती परन्तु अत्यधिक प्रभावकारी दवा है।

गोरा पुत्र उत्पन्न करने के लिए

मोरपंख का चन्द्रमा की शक्लवाला भाग लेकर कैंची से बारीक काटकर और गुड़ में लपेटकर गोली बना लें। गर्भ के दूसरे मास के आरम्भ में, जब कि स्त्री का दाहिना स्वर चल रहा हो, वह गोली जीवित बछड़ेवाली गौ के दूध के साथ खिला दो। उस दिन केवल उस गौ का दूध ही पीने को दिया जाए। सायंकाल चावल दे सकते हैं। शर्तिया पुत्र उत्पन्न होगा और चाँद जैसा गोरा।

–(शेष अगले अंक में)

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

स्वावलंबन

लेखकः पं० माधवराव

स्वावलंबन ही को आत्म-निर्भरता, स्वातन्त्र्य-प्रियता, स्वयं-सहाय और आत्मावलम्बन भी कहते हैं। इसका अर्थ है-अपने ही आधार पर संसार-यात्रा तय करना, अथवा अपने पैरों पर आप खड़ा होना। सफलता के जितने अंग हैं उनमें इसका दर्जा बहुत ऊँचा है। यह एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य, अनेक विघ्नवाधाओं के रहते हुए भी, अपने उद्देश्य को पूरा करने का यत्न कर सकता है। आलसियों और परोपजीवियों के लिए तो यह विष से भी अधिक कड़ुआ है। जिसे संसार में रहना है, जिसे संसार में अपना अस्तित्व स्थिर रखना है और जिसे सुख का कुछ अनुभव करना है, उसके लिए स्वावलंबन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रिय विषय है। मनुष्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि स्वावलंबन के बिना कोई समाज, देश या राष्ट्र पराधीनता से कभी मुक्त नहीं हो सकता।

अंग्रेजी में एक कहावत है- अर्थात् परमेश्वर उन्हीं लोगों की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता आप किया करते हैं। इस विषय में हरक्यूलीज और गाड़ीवान का किस्सा प्रायः सब विद्यार्थी जानते होंगे। उक्त कहावत या किस्से में स्वावलंबन का जो तत्व है उसकी सत्यता महाराणा प्रतापसिंह के जीवन में अच्छी तरह प्रकट होती है। महाराणा के सहायक कौन थे? वही मुट्ठी भर कोल भील! और उनका जानी दुश्मन कौन था? वही मुगलसम्राट अकबर, जो उस समय सारे हिन्दुस्तान का कर्ता, धर्ता और विधाता था। फिर, महाराणा ने इतने प्रचण्ड बली से किसके सहारे शत्रुता की थी? क्या उन्हें किसी की सहायता थी? नहीं, उन्होंने केवल अपनी स्वावलंबन-शक्ति का भरोसा किया; उन्होंने केवल अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक आत्मशक्ति ही के भरोसे स्वाधीनता की प्राप्ति का प्रयत्न किया। अन्त में वे सफलमनोरथ भी हुए। तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्य स्वयं अपनी सहायता आप नहीं करता तब तक कोई भी उसकी सहायता नहीं कर सकता। स्वावलंबन ही मनुष्य की उन्नति का मुख्य उपाय है। प्राणि-शास्त्र का सिद्धान्त है कि प्रत्येक जीव को अपनी उन्नति अथवा सुख की प्राप्ति के लिए स्वयं यत्न करना पड़ता है। इसी को जीवनार्थकलह कहते हैं। इस प्राकृतिक नियम से हमारे लिए यही शिक्षा मिलती है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी उन्नति के लिए स्वयं यत्न करे। इस प्राकृतिक नियम को परमेश्वर की इच्छा भी कह सकते हैं। ऐसी अवस्था में परमेश्वर अपनी इच्छा के विरुद्ध, अथवा प्राकृतिक नियम के विरुद्ध, उन लोगों की सहायता कैसे कर सकता है जो अपनी सहायता स्वयं आप नहीं कर सकते। यदि वस्तुस्थिति का विचार किया जाय तो कहना पड़ेगा कि अकबर सरीखे बादशाह के साथ सफलतापूर्वक विरोध करना महाराणा प्रतापसिंह के लिए एक असम्भव बात थी। परन्तु यह असंभव कार्य भी महाराणा की स्वावलंबिनी वृत्ति के द्वारा सिद्ध हो गया, अर्थात् जब उन्होंने स्वयं यत्न किया तभी प्राकृत नियम के अनुसार अथवा

ईश्वर की कृपा से, उन्हें सफलता प्राप्त हुई। हम लोग बात-बात में कहा करते हैं कि परमेश्वर हमारा सहायक है, परन्तु इसके अर्थ की ओर बहुत कम लोग ध्यान दिया करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि परमेश्वर हमारा सहायक है, परन्तु कब? जब हम स्वयं अपनी सहायता करें, जब हम स्वयं अपनी उन्नति के लिये यत्न करें-तब। अन्यथा नहीं। श्रीसमर्थ रामदास स्वामी ने अपने 'दासबोध' के चौथे दशक के आठवें समास में, सख्य भक्ति का निरूपण करते समय कहा है-"यह सभी कहते हैं कि ईश्वर को छोड़कर हमारे लिए कोई नहीं है, परन्तु उनकी निष्ठा कुछ वैसी ही नहीं होती।" तात्पर्य यही है कि यदि ईश्वर को अपना सहायक बनाना है, यदि ईश्वर के साथ मित्रता या सख्यभक्ति करनी है तो हम लोगों को उसकी इच्छा के अनुसार-उसके प्राकृतिक नियमों के अनुसार-बर्ताव करना चाहिए, अर्थात् हम लोगों को अपनी सहायता स्वयं आप ही करनी चाहिए। हम लोगों को स्वावलम्बन के विषय में अपनी पूर्ण निष्ठा दिखानी चाहिए।

इतिहास पढ़नेवाले जानते हैं कि जब कोई जाति स्वावलंबन की शक्ति खो देती है तब वह अपने अस्तित्व का नाश करने का मार्ग भी बना लेती है। अधिक दूर जाने की कोई आवश्यकता नहीं। हम देख रहे हैं कि हिन्दू-राष्ट्र के निर्माण होने में हजारों बाधायें हैं। क्यों? सिर्फ इसीलिए कि अधिकांश हिन्दुओं में प्रति सैकड़ा प्रायः निन्यानवे मनुष्यों में इस शक्ति का सर्वथा अभाव है! स्मरण रहे कि अस्तित्व का कायम रखना केवल इस शक्ति के द्वारा ही सम्भव है। श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा ही है कि पराधीनता के समान दुःखदायक वस्तु कुछ भी नहीं है। यहाँ तक कि पराधीन आदमी को स्वप्न में भी सुख प्राप्ति नहीं हो सकती। बात सच है। आज कल भी "स्वाधीनता" का नाम सुनते ही लोगों के मुँह में पानी आ जाता है। परन्तु स्वाधीनता जितनी मीठी वस्तु है उसके प्राप्त करने का साधन भी उतना ही कठिन है। क्या जो मनुष्य अपने पैरों पर आप खड़ा हो नहीं सकता वह स्वाधीन रहने का अधिकारी कभी हो सकता है? कभी नहीं।

अब यह जानना चाहिए कि स्वावलंबन शक्ति का साधन क्या है? यह बात सब लोगों को मालूम है कि जो वस्तु जितने अधिक महत्व और अधिक मूल्य की होती है उसकी प्राप्ति भी बहुत कठिनाई के साथ होती है। यही हाल प्रस्तुत विषय का भी है। स्वावलंबन सिखाने का यदि कोई उचित मार्ग है तो वह आत्मविश्वास ही है। स्वावलंबन में आत्म-विश्वास, दृढ़-निश्चय और सदा प्रयत्न करने रहने की इच्छा सम्मिलित है। आत्म-विश्वास के बिना-अपनी कार्यकारिणी शक्ति पर दृढ़ विश्वास रखकर काम किये बिना-हम स्वावलंबी कभी नहीं हो सकते। जो मनुष्य स्वयं अपनी सहायता करना चाहता है, जो मनुष्य स्वयं अपने ही ऊपर अवलंबित रहना चाहता है, उसको सबसे पहले आंतरिक शक्ति का पूरा विश्वास होना चाहिए। जिस मनुष्य को स्वयं अपने आत्मिक बल पर विश्वास नहीं है वह अपने अवलंब से कोई कार्य कैसे कर सकता है! परमेश्वर की कृपा से मनुष्य में एक ऐसी स्वाभाविक शक्ति है जिसका ठीक-ठीक उपयोग होने से मनुष्य के लिए इस संसार में कोई पदार्थ असंभव नहीं हो सकता। नैपोलियन जैसे प्रयत्नशील मनुष्यों की भाषा में "असम्भव" शब्द का उपयोग कभी नहीं किया जाता। आत्म-विश्वास के

उचित उपयोग ही से मनुष्य ''नर'' से ''नारायण'' हो जाता है।

स्मरण रहे कि मनुष्य की आंतरिक शक्तियों का विकास आत्म-विश्वास ही से हुआ करता है। यदि मनुष्य अपनी आंतरिक शक्तियों पर विश्वास न करे, यदि वह स्वयं यत्न न करे और यदि वह अपनी उन्नति के लिए दूसरों के प्रयत्न पर अवलंबित रहे तो उसका आत्मविश्वास नष्ट हो जायगा। यथार्थ में उसका मनुष्यत्व ही जाता रहेगा। जिस समाज में या जिस देश में ऐसे लोगों की संख्या आधिक होती है, तो अपनी उन्नति और सुख के लिए दूसरों पर अवलंबित रहते हैं, उस समाज या उस देश की सदा अधोगति हुआ करती है। वह सदा पराधीन ही बना रहता है। इस प्रकार पराधीनता होते-होते मनुष्य ऐसी निकृष्ट अवस्था को पहुँच जाता है कि वह छोटे-छोटे कामों में भी औरों के मुख की ओर ताकने लगता है। परन्तु जिस देश में स्वावलंबी पुरुषों की संख्या अधिक होती है, जिस देश के निवासी अपनी आंतरिक शक्तियों पर पूरा-पूरा विश्वास करते हैं, वह देश उन्नति और सुख के शिखर पर पहुँच सकता है। सर्वसाधारण लोग ऐसे ही प्रयत्नशील, स्वावलंबी और आत्मविश्वास करने वाले महात्माओं का अनुकरण करके आत्मोद्धार के काम में लग जाते हैं। आत्म-विश्वास और स्वावलंबन का अभ्यास विद्यार्थी-अवस्था ही से होना चाहिए।

इस विषय में एक बात और ध्यान देने योग्य है। वह यह कि जब किसी को कहीं से मुफ्त का टुकड़ा मिल जाने की आशा और विश्वास रहता है तब वह मनुष्य हाथ पैर हिलाने और उद्योगधंधा करने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। इस बात पर हमारे यहाँ उचित ध्यान नहीं दिया जाता। देखिए, सैकड़ों 'साधू-वैरागी'' कहलाने वाले मस्त होकर मजा उड़ा रहे हैं और आजकल के नामधारी दानवीर उन्हें जी खोलकर धन लुटा रहे हैं और जो यथार्थ में भिक्षा और दान के पात्र हैं उनको कोई पूछता तक नहीं। ये लोग धन का अपव्यय करने के दोषी तो हैं ही, परन्तु इन पर एक और भी जिम्मेदारी है। ये लोग दूसरों को परावलम्बी, आलसी और समाज-कंटक बनने में सहायता देते हैं। कोई-कोई नवयुवक यह स्वप्न देखा करते हैं कि हमें किसी रिश्तेदार की अथवा पैतृक सम्पत्ति थोड़े दिनों में सब कुछ नष्ट कर दिया करते हैं। इनको इस बात का भरोसा रहता ही है कि हमें बापदादों से ''टेकने के लिए लकड़ी'' तो मिलने ही वाली है, हम क्यों व्यथा मेहनत करें, परन्तु स्मरण रहे कि जो 'टेक' (सहारा) पकड़कर चलना सीखता है वह बिना उसके चल ही नहीं सकता। एक अंग्रेज ग्रन्थकार कहता है कि ''नवयुवकों को आर्थिक सहायता (आवश्यकता से अधिक) देना बहुधा उनको लंगड़ा और निरुद्योगी बनाने का एक बहुत ही सरल उपाय है।'' परन्तु हमारे यहाँ के इने गिने धनवान् अपने लड़कों के पीछे हर वक्त सात नौकर रक्खे बिना अपनी बेइज्जती समझते हैं। ऐसे ही पिताओं से 'बाबा की जायदाद से दादा के पिंड करा देने वाले' सुपुत्र पैदा हुआ करते हैं।

-(शेष अगले अंक में)

स्वास्थ्योपयोगी आयुर्वेदिक शिक्षाएँ

लेखकः वैद्य बालकृष्ण आयुर्वेदाचार्य (स्वर्णपदक-प्राप्त), आयुर्वेदवाचस्पति

मानव जीवन का परम लक्ष्य पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति है। उत्तम स्वास्थ्य के अभाव में रुग्ण शरीर से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की उपलब्धि असम्भव है। आरोग्य के बिना जीवन भार है। स्वस्थ योद्धा राष्ट्र को विजयी बनाते हैं। आचार्य चरक के अनुसार-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।।

आरोग्य के लिये स्वास्थ्य-शिक्षा आवश्यक है। प्राचीन ऋषि-मुनि आयुर्वेद के उपदेशों का पालन करते हुए स्वस्थ तथा दीर्घ जीवन प्राप्त करते थे। सम्प्रति विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-सूत्रों की उपेक्षा होने से रोग, अवसाद एवं नैराश्य की वृद्धि हो रही है।

आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है। इसमें शरीर, मन तथा आत्मा के प्रसाद और उन्नयन का विशद विवेचन किया गया है। स्वस्थ की स्वास्थ्य-रक्षा एवं आतुरका विकार-प्रशमन-ये आयुर्वेद के दो मुख्य प्रयोजन हैं। इसमें स्वस्थ व्यक्ति की परिभाषा वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत की गयी है-

समदोषः समाग्निश्च समधातुर्मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

अर्थात् वात-पित्त कफ की समता, त्रयोदश अग्नियों, सप्त धातुओं और मलद्रव्यों की क्रिया एवं परिमाण का साम्य तथा आत्मा, इन्द्रियों और मन की प्रसन्नता स्वस्थता कहलाती है। स्वस्थ रहने के लिये आयर्वेद में पद-पद पर दिनचर्या एवं ऋतुचर्या के अन्तर्गत आरोग्यदायक शिक्षाओं का समावेश किया गया है।

शौच के पश्चात् स्वच्छ मिट्टी से हाथ धोने चाहिये। अब यह सिद्ध हो चुका है कि मल में विद्यमान फेरस साबुन से स्वच्छ नहीं होता। मिट्टी में स्थित सिल्किन तत्त्व फेरस के साथ मिलकर फेरासिल्किन आक्साइड के झाग पैदा करता है। परिणामतः मल पूर्णांश में मुक्त हो जाता है।

दन्तधावन- दाँत तथा मुख की शुद्धि-हेतु नीम या बबूल की दातुन श्रेष्ठ है। दाँतों की अशुद्धि से अधिकांश पेट की व्याधियाँ जन्म लेती हैं। विश्व-स्वास्थ्य-संगठन के प्रमुख चिकित्सक डॉ0 डेविड बर्नीज ने यह प्रमाणित किया है कि नीम का दातुन कैंसर और मुँह की अन्य विकृतियों को रोकने में सक्षम है।

व्यायाम- विभिन्न रोगों का प्रतीकार करने या रोग-प्रतिरोध-क्षमता बढ़ाने-हेतु व्यायाम बहुत लाभकारी है। प्राणायाम, भ्रमण, योगासन, तैरना आदि शरीर और मन दोनों के लिये बलदायक हैं।

स्नान-भारतीय जीवन में नित्य-स्नान का विशेष महत्व है। शरीर की त्वचा में असंख्य छिद्र होते

हैं, जिनसे वाष्प या पसीने के द्वारा हर समय सोडियम क्लोराइड, यूरिया, लेक्टिक एसिड आदि मल–द्रव्य निकलते रहते हैं। त्वचा के छिद्रों का अवरोध होने पर ये हानिकारक द्रव्य शरीर में ही रहकर विकृति पैदा करते हैं। स्नान द्वारा इन छिद्रों का मुँह खुल जाता है तथा त्वचा निर्मल, नीरोग और पुष्ट होकर शरीर की रक्षा करती है।

आहार– आयुर्वेद में आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य–ये तीन जीवन के उपस्तम्भ माने गये है। आहार ही प्राणों का आधार है। आहार संतुलित रूप में तथा समय पर करना चाहिये। प्रकृति, संयोग, देश और काल के विरुद्ध किया गया भोजन अहितकारी होता है। भोजन पाँव धोकर एवं बैठकर करना चाहिये। पैर धोने से रक्तवाहिनियों का संकोच होता है, जिससे रक्तप्रवाह पाँवों में कम और पेट में अधिक होता है। बैठने पर भी पैरों की नसें दबने से खून पेट की ओर अधिक प्रवाहित होता है। इस अवस्था में पाचन–क्रिया सुधरती है। मौन होकर भोजन करने से वायुरोग नहीं होते। भोजन न तो अधिक शीघ्र करना चाहिये न अत्यन्त धीरे। उष्ण, स्निग्ध और मन लगाकर किया हुआ आहार शीघ्र पोषण देता है। भोजन करते समय पूर्व में मधुर, मध्य में अम्ल एवं अन्त में लवणयुक्त पदार्थ खाने चाहिये। अजीर्णावस्था में किया गया भोजन विष के समान होता है।

निद्रा–प्रगाढ़ निद्रा अरोगता, बल, वर्ण तथा स्फूर्ति प्रदान करती है। मध्यरात्रि के पहले की नींद अधिक लाभप्रद है। अधिक निद्रा, अल्प निद्रा तथा सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की निद्रा से आयु क्षीण होती है। चिन्तामुक्त होकर स्वच्छ और शान्त स्थान पर सोना चाहिये। तेज गंध, उपवास, शोक, भय एवं क्रोध तथा अनिद्रा रोग को उत्पन्न करते हैं। पर्याप्त और सम्यक् निद्रा शारीरिक तथा मानसिक रोगों से बचाती है।

ब्रह्मचर्य–अधिक विषय–भोग शरीर का विनाशक होता है। ब्रह्मचर्य आरोग्य का मुख्य सूत्र है। आयुर्वेद के अनुसार अधिक विषयभोग से भ्रम, बलक्षय, सुस्ती, पैरों की कमजोरी, धातुक्षय, इन्द्रियों का क्षय और अकाल–मृत्यु होती है। ब्रह्मचर्य या अल्यल्प कामाचार से स्मृति, आरोग्य, आयुष्य, मेधा, पुष्टि, यश एवं चिरयौवन की प्राप्ति होती है।

वेगधारण–महर्षि चरक के उपदेशानुसार मनुष्य को अत्यन्त साहस, लोभ, शोक, भय, क्रोध, मान, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अतिराग, परधन तथा परस्त्रीहरण की इच्छा, कठोर वचन, चुगलखोरी, असत्य–भाषण, परपीड़न, हिंसा, प्रभृति वेगों को धारण करना अर्थात् इन्हें रोकना चाहिये। मानसिक रोगों से बचने का यह उत्कृष्ट उपाय है। इसी प्रसंग में अधारणीय वेगों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मूत्र, पुरीष, शुक्र, अपानवायु, वमन, छीक, डकार, जँभाई, क्षुधा, पिपासा, आँसू, निद्रा और श्रमजन्य निःश्वास के वेग को कभी नहीं रोकना चाहिये। अधारणीय वेगों के धारण तथा धारणीय वेगों के अधारण से बहुत–सी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

प्रज्ञापराध निषेध– बुद्धि, धैर्य एवं स्मृति का भ्रंश या नाश दुःख और रोगों को आमन्त्रित करता

है। इनकी विकृति में जो कर्म किये जाते हैं, उन्हें प्रज्ञापराध कहते हैं। बुद्धि क्षीण होने पर मनुष्य हितकारी काल, कर्म तथा अर्थ को अहितकारी और अहितकारी को हितकारी समझने लगता है। धृति–भ्रंश होने पर विषयभोगों की ओर से विमुख होना असम्भव हो जाता है। स्मृतिह्रास से विभ्रमता एवं अन्य मानसिक रोग प्रादुर्भूत होते हैं। अतः मनुष्य को ज्ञानमार्ग कभी च्युत नहीं होना चाहिये।

आचार–रसायन– व्याधि का विनाश करने की अपेक्षा उसे उत्पन्न ही न होने देना अधिक श्रेष्ठ है। आयुर्वेद में रसायन–प्रकरण में यह व्यवस्था की गयी है। रसायनों में आचार–रसायन का शीर्षस्थान है। पुनर्वसु आत्रेय के मतानुसार सत्यवादी, अक्रोधी, मदिरा और अतिवासना से विरत, अहिंसक, अतिश्रमरहित, शान्त, प्रियवादी, जपशील, पवित्र, धीर, दानी, तपस्वी, देवता, गाय, गुरु और वृद्धों की सेवा में रत, अक्रूर, दयालु, समय पर सोनेवाला, दूध और घी का नित्य सेवन करनेवाला, युक्तिविद्, निरहंकारी, उत्तम आचार–विचारवाला, विशालहृदय, आध्यात्मिक विषयों में प्रवृत्त, आस्तिक, जितेन्द्रिय तथा देश–काल के अनुसार आचरण करनेवाला मनुष्य सदा रसायनयुक्त होता है। रसायन के सेवन से दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, यौवन, प्रभा, वर्ण, बल, सिद्धि, नम्रता और कान्ति की प्राप्ति होती है। आप्तजनों की शिक्षा का अनुपालन करते हुए हितकारी आहार–विहार का सेवन करनेवाला व्यक्ति कभी रोगी नहीं होता–

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।।

❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

संत तुकाराम बीज	3 मार्च
छत्रपति शिवाजी महाराज	4 मार्च
राममनोहर लोहिया	22 मार्च
हेमु कालानी	23 मार्च
श्री रामचन्द्र	25 मार्च
महावीर स्वामी	29 मार्च
महावीर हनुमान	31 मार्च

महापुरुषों की पुण्यतिथि

सरोजिनी नायडू	2 मार्च
बाबा पृथ्वीसिंह आजाद	5 मार्च
पं0 लेखराम	7 मार्च
पं0 गोविन्दबल्लभ पंत	7 मार्च
सावित्रीबाई फुले	10 मार्च
पं0 गुरूदत्त विद्यार्थी	19 मार्च
शहीद सरदार भगतसिंह	23 मार्च
शहीद राजगुरू	23 मार्च
शहीद सुखदेव	23 मार्च
गणेशशंकर विद्यार्थी	25 मार्च
भाई काका	31 मार्च

1 मार्च	होलिका दहन
2 मार्च	धूलेंडी
4 मार्च	राष्ट्रीय सुरक्षा दिवस
8 मार्च	विश्व महिला दिवस
15 मार्च	विश्व ग्राहक दिवस
17 मार्च	विश्व दिव्यांग दिवस
18 मार्च	नव संवत्सर
21 मार्च	विश्व वन दिवस
30 मार्च	राजस्थान राज्य स्थापना दिवस

विद्या ही मनुष्य का स्थायी धन है

लेखकः डॉ० रामचरण

हम सभी विद्यारूपी पूँजी अर्जित कर सकते हैं। यह पग-पग पर हमारी सहयता करती है। कहा है-

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्तिः।।

'जिन लोगों के पास विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण और धर्म नहीं है, वे संसार में पृथ्वी पर भारस्वरूप होकर मनुष्य के वेश में पशु के समान है।

यदि आप अपने देश से बाहर किसी व्यापार, अध्ययन, नये सम्बन्ध, सैर और ज्ञान-प्राप्ति के लिये विदेश जा रहे हैं, जहाँ यह आशा करनी चाहिये कि कोई भी अपना मित्र या सम्बन्धी जान-पहिचानवाला व्यक्ति सहायता और सहयोग के लिये न मिलेगा, वहाँ आपकी शिक्षा द्वारा प्राप्त विद्या ही काम आयेगी। विद्या आपकी बुद्धि को तीव्र करती है, समझने-समझाने की शक्ति को बढ़ाती है और तर्क करने योग्य बनाती है। भारतीय चिन्तकों ने सत्य ही कहा है-

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च।।

अर्थात् यह बात स्मरण रखने योग्य है कि 'विदेशो में विद्या मित्र के समान काम करती है। घरों में पत्नी मित्र है। रोगग्रस्त के लिये औषध मित्र है तथा मृतक के लिये धर्म मित्र है।'

यदि आप किसी उच्चकुल (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) में जन्मे हैं, राजपरिवार या उच्च पद पर रहे (माता, पिता, अधिकारी, जमींदार, शासक आदि में से कोई हैं), तो केवल जन्म से उच्चकुल के कारण आपका सम्मान नहीं होगा। विशाल सम्पत्ति वाले, राजा-महाराजा, अमीर, पूँजीवाले परिवार में लेने पर भी आपमें विद्या के असली धन की आवश्यकता है। आपके ज्ञान, आपकी योग्यता, आपकी विद्या-बुद्धि के अनुसार ही आपका सामाजिक सम्मान होगा। जनता विद्वान् का ही स्थायी आदर करती है। कहा है कि-

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।

'जिस तरह बिना गन्ध के किंशुक के लाल फूलों को भी कोई नहीं पूछता, उसी तरह रूपं-यौवन से युक्त और उच्चकुल में उत्पन्न पुरुष भी यदि विद्याहीन हैं, तो उनका कोई सामाजिक, पारिवारिक, राष्ट्रिय आदर नहीं होता।' विद्या से ही आदर होता है।

विद्या बड़े परिश्रम, लगातार अध्ययन, विद्वानों तथा अध्यापकों के सम्पर्क, सहायता, गुरु की प्रतिष्ठा–सेवा से प्राप्त होती है। उसके लिये बड़े कष्ट, संयम और विपत्तियाँ उठानी पड़ती है। श्रम के बिना या बिना कष्ट उठाये कोई विद्या प्राप्त नहीं कर पाता। सांसारिक भोग–विलास, सुख–सुविधा, आराम प्राप्त करने को इच्छुक आलसी विद्यार्थी को विद्या प्राप्त नहीं होती। सच्चे विद्यार्थी को तो सुख–सुविधा आदि की इच्छा नहीं करनी चाहिये। सुखार्थी को विद्या और विद्यार्थी को सुख प्राप्त नहीं होते। विद्या–प्राप्ति तो एक साधना, एक तप है–

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम।
सुखार्थिनां कुतो विद्या विद्यार्थिनां कुतः सुखम्।।

विद्यादान (दूसरों को ज्ञान देना, दूसरों को पढ़ाना–लिखाना, अध्ययन कराना आदि) शुभ कर्म है। दूसरों को ज्ञान की दृष्टि से आगे बढ़ाने मं धर्म है। स्वयं विद्या प्राप्त कर ली, इतना ही पर्याप्त नहीं है, अज्ञानियों, अल्पज्ञों, अल्प विकसित स्त्री–पुरुषों को पढ़ाने, शिक्षित करने, समुन्नत बनाने में धर्म है। अतः कहा है–'हे सरस्वति! हे विद्या देनेवाली ज्ञान की देवि! आपके पास ज्ञान का अद्भुत अक्षय कोश है, जो खर्च करने से उलटे बढ़ता ही रहता है।' जितना दूसरों को ज्ञान देते हैं वह उतना ही बढ़ता–विकसित होता है, पर यदि उसे व्यय न किया जाय, यदि आप दूसरों को न पढ़ायें, ज्ञानवान्, बुद्धिमान बनाने का प्रयत्न न करें तो स्वयं आपका ज्ञान भी कम और कभी–कभी तो बिलकुल नष्ट हो जाता है। विद्या की पूँजी जमा करने से कम हो जाती है। अतः दूसरों को जितना बने, जिस भी विषय का बने, जों भी आपके स्वयं के अनुभव हों, वे अवश्य दूसरों को देने चाहिये–

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात्।।

विद्वान् जहाँ भी जायगा, रहेगा, वहीं वह समादृत होगा, पूजा जायगा। उसकी विद्या की प्रतिष्ठा सर्वत्र निश्चित ही समझिये। कहा भी है कि विद्वान् और राजा किसी प्रकार भी एक समान नहीं है। राजा की तो अपने देश में ही पूजा होती है; परन्तु विद्वान् की सब जगह प्रतिष्ठा होती है। प्रत्येक व्यक्ति उसका आदर करता है। विद्या ही समाज में यश प्रतिष्ठा का मूल केन्द्र है। अतः सब कुछ छोड़कर अधिक–से–अधिक विद्या और योग्यता प्राप्त करनी चाहिये–

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्ये कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।

यह बात अपने मन में स्थिर कर लेना चाहिये कि सोना, चाँदी, भूमि या गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ किसी की सच्ची सम्पदा नहीं है, वास्तविक सम्पदा तो विद्या ही है। विद्या एक ऐसा अमूल्य धन है, जिसे न परिवार के भाई–बन्धु बाँट सकते हैं और न चोर चुरा सकते हैं। दान देने से भी इसका क्षय नहीं होता–

ज्ञातिभिर्वण्ट्यते नैव चौरणापि न नीयते।
न दानेन क्षयं याति विद्यारत्नं महाधनम्।।

और-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः।।

"विद्या ही मनुष्य की वास्तविक शोभा है। विद्या ही अत्यन्त सुरक्षित सम्पत्ति है। ज्ञान-विज्ञान से ही सब भोग भोगे जा सकते हैं। विद्या ही गुरुओं का गुरु और विदेश में सबसे बड़ा भाई है। विद्या परा देवता है। सरस्वती सर्वोच्च है, क्योंकि उसी की पूरी कृपा से हमें धर्म का ज्ञान होता है। विद्यावान् व्यक्ति की सर्वत्र पूजा होती है, उसके धन की नहीं। वे तो पशु-तुल्य हैं, जो अपढ़, अज्ञानी, अशिक्षित हैं। अन्तर यह है कि पशु में सींग-पूँछ नहीं है।' इसलिये अपने-आपको योग्य बनाना चाहिये।

न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एवं नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।।

अर्थात् इस विद्यारूपी धन की विशेषता तो देखिये- विद्यारूपी सम्पत्ति को न चोर चुरा सकता है, न राजा ही छीन सकता है। न भाई इसे बाँट सकते हैं और न यह किसी तरह का भार ही डालती है। चोरी से कोई विद्वान् नहीं बनता, अपने ही संयम, परिश्रम, इच्छा, स्वाध्याय से बुद्धि बढ़ती है। व्यय करने पर यह सम्पत्ति स्वयं ही बढ़ती है। विद्या धन सर्वश्रेष्ठ धन है। सदा-सर्वदा अपने ही पास बना रहता है।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन भासते।
कुलं पुरुषसिंहिन चन्द्रेणैव हि शर्वरी।।

जैसे एक चन्द्रमा से ही रात्रि चमकती है, उसी तरह पुरुषसिंह और विद्यायुक्त एक ही सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल चमक उठता है। विद्या सुपात्र बनाती है।

अजरामरवत् प्राज्ञः विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत एव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत।।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह अजर और अमर की तरह विद्या और अर्थ (धन-सम्पत्ति आदि) को प्राप्त करे। ये दोनों ही पूरे जीवनभर मनुष्य की सेवा-सहायता करते रहते हैं। न जाने कब मृत्यु आ जाय; इस भय से सदा धर्म का आचरण करता रहे।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा।।

अर्थात् बालकों को विद्यावान् और शिक्षित करने, उनमें विद्या–बुद्धि–विवेक, एकाग्रता, संयम, प्रेम, सहानुभूति परिश्रम करने–जैसी उत्तमोत्तम आदतें डालनेवाले माता–पिता ही हैं। ये गुण पढ़ने से ही विकसित होते हैं। जैसे–जैसे बच्चे पढ़ते–लिखते हैं, विद्या–प्राप्त करते हैं, वैसे–वैसे वे अच्छे नागरिक बनते जाते हैं। ज्ञान–प्राप्ति ही बच्चों को सुसंस्कृत करती है तथा उनके बालोचित दुर्गुणों को दूर करती है। 'जिस माता–पिता ने अपने बच्चों को शिक्षित नहीं किया, वे दोनों ही उनके शत्रु होते हैं। याद रखिये, हंसों के बीच श्वेत दीखनेवाले बगुले की तरह मूर्ख मनुष्य भी सभा में शोभा नहीं पाता। विद्वान् ही शोभित होता है।'

विद्या विनयोपेता हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य।
कांचनमणिसंयोगो न जनयति कस्य लोचनानन्दम्।।

'विनय से युक्त विद्या किस मनुष्य के चित्त को प्रसन्न नहीं करती? सोने में जड़ी हुई मणि किस पुरुष की आँखों को अच्छी नहीं लगती।'

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

यादि रखिये, 'विद्या मनुष्य को विनयशील–सज्जन बनाती है, विनय से वह योग्य हो जाता है। मनुष्य की अपनी योग्यता से धन अर्जित होता है और धर्म की प्राप्ति होती है। ऐसा व्यक्ति ही पूरे जीवनभर सुखी रहता है।'

नक्षत्रभूषणं चन्द्रो नारीणां भूषणं पतिः।
पृथिवीभूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम्।।

अर्थात् 'तारों की शोभा चन्द्रमा से, नारी को शोभा उसके पति से पृथ्वी की शोभा वहाँ के योग्य राजा से होती है, किन्तु विद्या ऐसा अमूल्य गुण है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति का चाहे वह दीनहीन गरीब पिछड़े कुल में ही क्यों न जनमा हो, समाज में सदा आदर–सत्कार होता है।'

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति।।

अर्थात् 'जिस मनुष्य ने अपनी आयु के प्रथम भाग (विद्यार्थी–जीवन) में अच्छी तरह विद्या प्राप्त नहीं की, दूसरे भाग (यौवन की अवस्था) में धन, तीसरे भाग में धर्म नहीं कमाया, वह चौथे भाग में क्या करेगा?' विद्या ही वह साधन है जिससे सम्पूर्ण आयु में धन, प्रतिष्ठा और धर्म मिलता है।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चापि रमयत्पयपनीय खेदम्।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।

याद रखिये, 'विद्या, कल्पलता की तरह सब लाभ पहुँचाती है। वह कष्टों में माता की तरह रक्षा करती है, पिता की भाँति हितकार्य में प्रेरित करती है, प्रिय धर्मपत्नी की तरह दुःख दूर कर मन को प्रसन्न करती है और वाणिज्य-व्यापार में सफलता देकर धन-सम्पत्ति प्राप्त कराती है। इस तरह सब प्रकार के यश-प्रतिष्ठा आदि विद्या से ही मिलते हैं। विद्या ही स्थायी धन है। सारांश यह है कि विद्या से ही संसार और समाज में सब कुछ प्राप्त होता है। ❁❁❁

इस रंग की तो झंडी ही नहीं थी

एक नगर में एक मुसलमान दर्जी था। जिसके पास कई शार्गिद काम करते थे। एक दिन वह दर्जी बीमार पड़ गया। उसको स्वप्न आया कि जिस कब्र में उसको उतारा गया है उसके चारों ओर रंग बिरंगे कपड़ों की झंडियां लगी हुई हैं। उसने फरिश्ते से पूछा कि ये रंग-बिरेंगे कपड़ों की झंडियां मेरी कब्र के चारों ओर क्यों लगी हुई हैं। फरिश्ते ने कहा जिन लोगों के आपने कपड़े फालतू रखे हैं उनकी झंडियां हैं और अल्लाह-ताला आपको इसके लिए सजा देगा। डर से हडबड़ाहट में उसकी आंख खुल गई। दो चार दिन में वह ठीक हो गया। जब वह अपनी दुकान पर गया, उसने अपने शार्गिदों से कहा कि **जब मैं किसी भी ग्राहक का अधिक कपड़ा लूं तो आप लोग यह बोल दिया करो-उस्ताद जी झंडी।** शार्गिदों ने पूछा झंडी की क्या बात है तो दर्जी ने कहा बस! ये बात मेरे तक रहने दो। इस प्रकार जब दर्जी कपड़ा लेता तो शार्गिद कह देते-झंडी। तो दर्जी फालतू कपड़ा न लेता।

एक दिन बहुत कीमती कपड़ा लेकर एक ग्राहक आया तो जब वह अधिक कपड़ा लेने लगा तो **एक शार्गिद ने कहा उस्ताद जी झंडी, दूसरे ने कहा-उस्ताद की झंडी।** दर्जी झल्लाकर बोला-क्या झंडी, झंडी लगा रखी है, इस रंग की तो वहां कोई झंडी थी ही नहीं। यदि एक लग भी गई तो देखा जाएगा।

स्वप्न में छोड़ी हुई बुराई छूटती नहीं जब तक बुराई के त्याग की दृढ़ प्रतिज्ञा न करें। ❁

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

शुद्ध रामायण सजिल्द	मूल्य 220)	श्रीमद् भगवद्गीता एक सरल अध्ययन	मूल्य 20)
शुद्ध रामायण अजिल्द	मूल्य 170)	सन्ध्या रहस्य	मूल्य 20)
शुद्ध हनुमच्चरित	मूल्य 60)	गीता तत्व दर्शन	मूल्य 20)
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)	दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)	बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
भारत और मूर्तिपूजा	मूल्य 30)	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
मील का पत्थर	मूल्य 20)	ओंकार उपासना	मूल्य 12)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)	आर्यों की दिनचर्या	मूल्य 12)
चार मित्रों की बातें	मूल्य 20)	दादी पोती की बातें	मूल्य 10)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	मूल्य 20)		
शान्ता	मूल्य 20)		
गृहस्थ जीवन रहस्य	मूल्य 20)		

फार्म–4

नियम 8 देखिये

1.	प्रकाशन का स्थान	मथुरा
2.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड मथुरा
	(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ
	(विदेशी है तो मूल देश)	नहीं
	पता	आकाशवाणी के सामने, वृन्दावन रोड मथुरा
4.	प्रकाशक का नाम	आचार्य स्वदेश
	(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ
	(विदेशी है तो मूल देश)	नहीं
	पता	सत्य प्रकाशन, वृन्दावन मार्ग, मथुरा
5.	सम्पादक का नाम	आचार्य स्वदेश
	(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ
	(विदेशी है तो मूल देश)	नहीं
	पता	सत्य प्रकाशन, वृन्दावन मार्ग, मथुरा
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	आचार्य स्वदेश, वृन्दावन मार्ग, मथुरा

मैं आचार्य स्वदेश एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

मथुरा
दिनांक 14 मार्च 2018

आचार्य स्वदेश
प्रकाशक के हस्ताक्षर

मथुरा, कुं0 उदयवीर जी आर्य मथुरा, श्री सत्यप्रिय जी आर्य हाथरस आदि ने राष्ट्र उत्थान के संदर्भ में अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। रात्रिकालीन बेला में आर्यवीर सम्मेलन पंकज आर्य की देखरेख में सम्पन्न हुआ। विशिष्ट अतिथि श्री रामबिहारीलाल आर्य प्रधान आर्यसमाज तिलकद्वार मथुरा रहे। आर्य वीरदल उत्तरप्रदेश के अध्यक्ष श्री पंकज आर्य ने सभी पदाधिकारियों को भावी कार्य की रूपरेखा समझायी। 25 तारीख को प्रातः पुनः श्रद्धापूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान किया गया। तीनों दिन यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य सोमदेव जी (ऋषि उद्यान अजमेर) रहे। सभी सभाओं में उनके सारगर्भित प्रवचन हुए।

समापन सत्र में ठा0 विक्रमसिंह अध्यक्ष (राष्ट्र निर्माण पार्टी) मुख्य अतिथि रहे। उन्होंने गुरुकुल के लिए एक लाख रुपये सहयोग देने की घोषणा की। इस सत्र की अध्यक्षता मुरादाबाद से पधारे श्री ज्ञानेन्द्र गांधी जी ने की। भारत सरकार के केन्द्रीय मंत्री श्री गिर्राजसिंह ने भी गुरुकुल महोत्सव में पधारकर सम्मेलन के गौरव को बढ़ाया। माननीय मंत्री जी का स्वागत श्री भगतसिंह वर्मा (कुलपति गुरुकुल विश्व विद्यालय), श्री प्रेमसिंह जादौन (कुलसचिव गुरुकुल वि0 वि0), आचार्य हरिप्रकाश (प्राचार्य गुरुकुल वि0 वि0) श्री राजेश चौधरी वरिष्ठ नेता भारतीय जनता पार्टी, वैदिक संस्कृति के अनन्य उपासक श्री विनोद जी बाजना, डॉ0 धीरजसिंह आर्य सभा प्रधान, श्री ज्ञानेन्द्र गांधी उप प्रधान, श्री सत्यप्रिय आर्य ऊँचागांव हाथरस, श्री ठा0 विक्रमसिंह, सेठ रामबिहारीलाल आर्य (प्रधान आर्य समाज तिलकद्वार मथुरा) आदि ने माला और दुपट्टों द्वारा किया। इस अवसर पर माननीय मंत्री श्री गिर्राजसिंह ने गुरुकुल के प्राचार्य आचार्य हरिप्रकाश जी का व गुरुकुल के अनन्य सहयोगी सेठ रामबिहारीलाल आर्य और क्रियाशीलता की प्रतिमूर्ति आर्य वीर दल उत्तरप्रदेश के अध्यक्ष का स्वागत माल्यार्पण द्वारा किया। इस अवसर पर कन्या गुरुकुल सासनी की प्राचार्या डॉ0 पवित्रा विद्यालंकार, पं0 नरदेव, कुंवर उदयवीरसिंह जी आदि ने आर्यसमाज की आवश्यकता के विषय में अपने सारगर्भित विचार रखे। केन्द्रीय मंत्री गिर्राजसिंह जी ने मुसलमानों को आह्वान करते हुये कहा कि वे उदारता का परिचय देते हुए अयोध्या में राममन्दिर के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करें क्योंकि भारत में कोई भी मुसलमान बाबर का वंशज नहीं है। सभी श्रीराम के वंशज हैं। संस्कृति को बचाने के लिए उन्होंने जनसमूह से जनसंख्या नियंत्रण कानून बनाने के लिए सरकार पर दबाव डालने का आह्वान किया।

इस सम्पूर्ण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये जहां गुरुकुल के प्राचार्य आचार्य हरिप्रकाश जी ने अथक प्रयास किया। वहीं गुरुकुल की साज–सज्जा और व्यवस्था के लिये सभी आगन्तुक महानुभावों ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। कुछ कार्यकर्त्ता श्री आचार्य जी के साथ दिनरात लगे रहे। उनमें श्री विवेकप्रिय आर्य, श्री भानुप्रताप आर्य, श्री योगेश आर्य, सेठ रामबिहारीलाल आर्य प्रमुख हैं। इस अवसर पर एटा, मैनपुरी, कन्नौज, इटावा, सिरसागंज, फिरोजाबाद, आगरा, भरतपुर, पलवल, फरीदाबाद, अलीगढ़, हाथरस, कासगंज, बदायूँ, सम्भल, मुरादाबाद, मेरठ, मुजफ्फरनगर, बागपत, गाजियाबाद, गौतमबुद्धनगर, खुर्जा, बुलन्दशहर, सहारनपुर, चन्दैना आदि स्थानों से कार्यकर्त्ता उत्साह सहित पधारे। अन्त में सभाध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्र गांधी ने सम्मेलन समापन की घोषणा की और गुरुकुल के प्राचार्य आचार्य हरिप्रकाश जी ने सभी का धन्यवाद किया। ❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	भ्रांति दर्शन	20.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	शान्ता	20.00
शंकर सर्वस्व	120.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	बाल मनुस्मृति	12.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	ओंकार उपासना	12.00
विदुर नीति	40.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	दादी पोती की बातें	10.00
चाणक्य नीति	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
नित्य कर्म विधि	32.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	व्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शान्ति कथा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
यज्ञमय जीवन	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	गायत्री गौरव	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
चार मित्रों की बातें	20.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
मील का पत्थर	20.00	जीजा साले की बातें	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2018 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल– 9759804182

Yogendra # 9927136600

मुद्रक : स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित